दंसण मूलो धम्मो

# आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2500 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 29 अंक नं० 9

## अध्यात्म-पद

[राग-आसावरी]

आतम जानो रे भाई ॥

जैसी उज्ज्वल आरसी रे, तैसी आतम जोत।
काया करमन सौं जुदी रे, सबको करै उदोत ॥आतम० ॥1॥

शयन दशा जागृत दशा रे, दोनों विकलप रूप।
निर विकलप शुद्धातमा रे, चिदानंद चिद्रूप ॥आतम० ॥2॥

तन बच सेती भिन्न कर रे, मनसों निज लवलाय।
आप आप जब अनुभवै रे, तहाँ न मन वच काय ॥आतम० ॥3॥

छहौं द्रव्य नव तत्त्वतैं रे, न्यारी आतम राम।
'द्यानत' जे अनुभव करैं रे, ते पावैं शिव धाम ॥आतम० ॥4॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

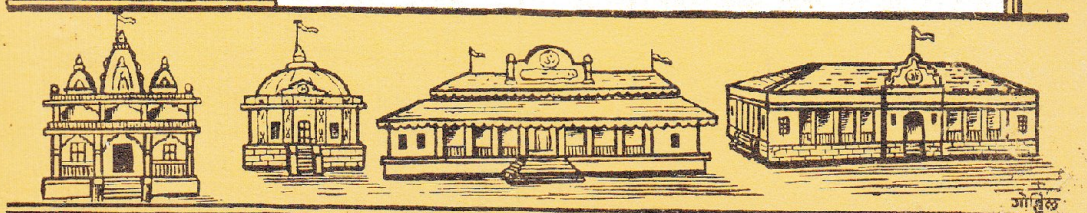

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जनवरी : 1974] वार्षिक मूल्य 4) रुपये ( 345 ) एक अंक 35 पैसा [पौष : 2500

# महावीर-अंजलि

भगवान के केवलज्ञान-दीपक में या साधक के श्रुतज्ञान-दीपक में राग नहीं है; दोनों दीपक वीतरागी चैतन्य-तेज से प्रकाशित हो रहे हैं।

निर्मोह हुई पर्याय ही निर्मोह आत्मा को जानकर अनुभवती है; इसलिये धर्मी की अनुभूति में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों शुद्ध अनुभवाते हैं; द्रव्य, गुण और पर्याय ऐसे भेद भी उसमें नहीं हैं।—ऐसी अनुभूति, वह सच्ची महावीर-अंजलि है।

## ❀ अनेकांत जीवन ❀

ज्ञान को अनेकांतस्वरूप से अनुभवनेवाले ज्ञानी जीव अपने स्वगुण के अस्तित्व से जीते हैं, और अज्ञानी अपने अस्तित्व को पर से भिन्न नहीं देखता हुआ, पर के ही अस्तित्व को देखकर अपनी नास्ति करता हुआ, भावमरण से पशु समान हो जाता है।

— इसप्रकार अनेकांत, वह आत्मा का जीवन है।

## ❀ प्रभु का सबसे बड़ा उपकार ❀

जो अपने ज्ञानस्वरूप अस्तित्व को नहीं देखता, वह जीव किसी न किसी प्रकार राग को या जड़ को आत्मा मानता है, इसलिये उससे भिन्न अपने चेतनमय अस्तित्व का वह लोप करता है—उसकी उसे श्रद्धा नहीं रहती। ऐसे जीवों को स्वरूप का सच्चा अस्तित्व बतलाकर भगवान ने भाव-मरण से उबारा है।

ज्ञानी तो चेतनस्वरूप से ही अपना अस्तित्व देखता है, इसलिये रागादि या शरीरादि को ज्ञान में ज्ञेयरूप से जानने पर भी वह जरा भी भ्रम में नहीं पड़ता, अपनी चैतन्यवस्तु को राग से और जड़ से भिन्न की भिन्न जीवन्त रखता है, चैतन्यवस्तु में अन्य को किंचित् एकमेक नहीं करता।—ऐसा स्वरूप-जीवन भगवान के अनेकांत-जीवन से प्राप्त हुआ है।—यह प्रभु का सबसे बड़ा उपकार है।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

# आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

जनवरी : 1974 ☆ पौष : वीर नि० सं० 2500, वर्ष 29 वाँ ☆ अंक : 9

## ❁ भगवान महावीर का धर्म ❁

जिस धर्म से भगवान महावीर मुक्त हुए, उसी धर्म से यह आत्मा पार होता है; इसलिये जो महावीर का धर्म है, वही इस जीव का धर्म है। इसलिये महावीर के धर्म को जानने से आत्मा का धर्म जाना जाता है। कुन्दकुन्दस्वामी ने प्रवचनसार की 80वीं गाथा में सम्यक्त्व-प्राप्ति के लिये जो भाव कहे हैं, वे यहाँ लागू करके कहते हैं कि—

**जो जानता महावीर को चेतनमयी शुद्धभाव से,**
**वह जानता निजआत्म को सम्यक्त्व ले आनंद से॥**

महावीर भगवान का धर्म क्या है? वह जानना चाहिये। महावीर एक आत्मा है; शुद्ध चैतन्यभाव, वह उसका धर्म है। ऐसे धर्मस्वरूप महावीर को जानने पर आत्मा चैतन्यस्वरूप से जानने में आता है; इसलिये चैतन्य और राग की भिन्नता का अनुभव होता है।—ऐसा अनुभव, वह महावीर का धर्म है; वही इस जीव का धर्म है और वही जिनागम का रहस्य है।

# धन्य, अरिहंतों का अतीन्द्रिय सुख!
# उसकी श्रद्धा करनेवाला निकट भव्य है

**बंध-मोक्ष वे जीव के परिणाम हैं;**
**मोक्ष में या बंध में जीव स्वयं अकेला है।**
**पर्याय वह कहीं बाह्य उपाधि नहीं है।**
**अहा, जैनदर्शन अद्भुत है!**

जैनमार्ग में सर्वज्ञदेव द्वारा कहे हुए जीवादि तत्त्वों का स्वरूप पहिचानकर जिसने अनंतकाल में नहीं किया ऐसा अपूर्व सम्यग्दर्शन प्रगट किया, वह जीव भगवान के मार्ग में आया है, वह संसार से पराङ्मुख होकर मोक्ष के मार्ग में आया है। वहाँ सम्यग्दर्शन है, उसके साथ तो आनंद, वीतरागता, अतीन्द्रियता और मोक्षसुख की वानगी है। चैतन्य के अनंतगुणों का रस सम्यग्दृष्टि की अनुभूति में भरा है। जीव के एक समय के शुद्ध परिणाम में अनंत गुणों के रस का स्वाद है—यही उसकी अद्भुतता है।

मोक्ष या संसार, वे जीव के परिणाम हैं, वे कहीं जीव से बाहर नहीं हैं। शुद्धता की पूर्णता, सो मोक्ष; अंशतः शुद्धता, सो मोक्षमार्ग और अशुद्धपरिणाम, सो संसार है। जीव का संसार कहीं शरीर, कर्म, मकान, रुपये-पैसे आदि अजीव में नहीं रहता; जीव के अशुद्धभाव में ही जीव का संसार है; मिथ्यात्व-राग-द्वेषादि भाव ही संसार है। इसीप्रकार अंतर्मुख परिणति होने पर सम्यग्दर्शनादि शुद्धपरिणाम होते हैं, उनमें मोक्षमार्ग और मोक्ष रहता है, वे कहीं बाहर नहीं रहते या बाहर से नहीं आते। जहाँ अपने आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन हुआ, वहाँ आत्मा स्वयं ही मोक्षमार्गरूप तथा मोक्षरूप हुआ। भाई, तेरे संसार और मोक्ष का सारा खेल तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय में है; बाह्य में अन्य के साथ तुझे कुछ लेना-देना नहीं है।—ऐसा स्वाधीन जैनधर्म है।

प्रत्येक द्रव्य परिणमनस्वभावी है; जीव में भी परिणमनस्वभाव है; वह सर्वथा स्थिर नहीं है परंतु परिणमनशील है। सम्यग्दर्शन भी द्रव्य का परिणाम है और सिद्धपद भी द्रव्य का परिणाम है। जो वस्तु में परिणमन न माने, उसके तो मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्व होने का या संसार दूर होकर मोक्ष होने का अवकाश ही नहीं रहता। परिणमन हो, तभी यह सब हो सकता है। जीव का अज्ञान परिणमन, वह संसार है; चिदानंदस्वभाव के सन्मुख होकर ज्ञानपरिणमन (अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन) हुआ, वह मोक्षमार्ग है, और उसकी पराकाष्ठा वह मोक्ष है। इसप्रकार आत्मा स्वयं अपने परिणमनस्वभाव के कारण परिणमित होकर स्वयं बंध या मोक्षरूप होता है; कोई दूसरा उसके बंध-मोक्ष को नहीं करता। द्रव्य-गुणस्वरूप से आत्मा सदा एकरूप रहता है और पर्यायरूप से वह नई-नई अवस्थाओंरूप होता रहता है—ऐसा उसका अनेकांत स्वभाव है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह तीनों ज्ञानस्वभाव के आश्रय से होनेवाले शुद्ध-वीतरागी परिणाम हैं, उनके फलरूप सिद्धदशा है, वह भी आत्मा के परिणाम हैं। सिद्ध को भी पर्याय होती है; पर्याय वह कोई उपाधिभाव नहीं है, वह तो वस्तु का स्वभाव है, वह वस्तु से भिन्न नहीं होता। वस्तु स्वयं परिणमनस्वभावी है। परिणमनस्वभाव के बिना आत्मवस्तु का ही अभाव हो जाता है। परिणाम से रहित कोई वस्तु नहीं होती।

संसारदशा में भी आत्मा अकेला ही अपनी संसार पर्यायरूप से परिणमित होता था; मोक्षमार्ग की दशा में भी आत्मा स्वयं अकेला ही अपनी सम्यग्दर्शनादि पर्यायरूप से परिणमित हो रहा है, और मोक्षदशा में भी आत्मा अकेला ही स्वयं अपनी पूर्ण ज्ञान-आनंदरूप पर्याय में परिणमित होता है।—इसप्रकार परिणमनस्वभावी आत्मा तीनोंकाल पर से भिन्न स्वयं अपनी पर्यायरूप से परिणमित होता है। आत्मा के ऐसे स्वभाव को अज्ञानी नहीं जानता, इसलिये अपने बंध-मोक्ष को वह पर के कारण होना मानता है। उस अज्ञानी को मोक्ष की तो खबर है नहीं, और अपनी संसारपर्याय की भी खबर नहीं है; वह शरीरादि में अपना संसार मानता है परंतु वह कहीं वास्तव में संसार नहीं है; संसार तो जीव की राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपर्याय है। तथा धर्म अर्थात् मोक्षमार्ग, वह भी धर्मी जीव के शुद्ध परिणाम (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) हैं, वे कहीं शरीर की चेष्टा में नहीं हैं। इसप्रकार मिथ्यादृष्टि जीव को अपने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वस्तु की प्रतीति नहीं है, इसलिये वह शुद्धतत्त्व से विमुख है। वह या तो वस्तु को पर्यायरहित

एकांत नित्य मानता है, अथवा एकांत क्षणिक मानता है, या फिर शरीरादि जड़ के साथ आत्मा को एकमेक मानता है, या राग को—पुण्य को मोक्षमार्गरूप से मानता है, इसलिये उसकी श्रद्धा और उसका ज्ञान वस्तुस्वरूप से बिल्कुल विपरीत हैं—मिथ्या हैं और मिथ्याश्रद्धा-ज्ञानपूर्वक शुभाचरण भी मिथ्या होता है। सम्यग्दृष्टि के श्रद्धा-ज्ञान वस्तुस्वरूप के बिलकुल अनुकूल होते हैं; द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप वस्तु को वे ज्यों का त्यों बराबर जानते हैं, देहादि की क्रिया को वे आत्मा से भिन्न जानते हैं, शुभराग को भी वे मोक्षमार्ग से भिन्न जानते हैं;—इसप्रकार जड़ से और राग से भिन्न अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व को जानकर वह धर्मी जीव मोक्ष के सन्मुख वर्तता है। अहो! मोक्षसुख उसकी प्रतीति में आ गया है, उसके श्रद्धा-ज्ञान मोक्षसुख का स्पर्श कर गये हैं, और संसार से विमुख हो गये हैं।

प्रवचनसार में श्री कुन्दकुन्दस्वामी केवली भगवंतों के अतीन्द्रिय सुख के प्रति महान प्रमोद से कहते हैं कि—अहा, सर्वज्ञ के अतीन्द्रिय सुख को सुनते ही जो जीव उत्साहपूर्वक उसका स्वीकार करता है, वह निकट भव्य है, और ऐसे अतीन्द्रिय सुख को सुनकर भी जो श्रद्धा नहीं करता, उसके प्रति उत्साहित नहीं होता और इन्द्रियविषयों को ही सुख मानता है, वह जीव अभव्य है; चैतन्य सुख की श्रद्धारहित वह जीव संसार में ही परिभ्रमण करता है और दुःख का ही अनुभव करता है। आत्मसुख की श्रद्धा के बिना उसे सुख का अनुभव कहाँ से हो?

इसीप्रकार गाथा 77 में कहते हैं कि—पुण्य और पाप इन दोनों के फल में इंद्रिय-विषय ही हैं और जो इंद्रिय-विषयों में रमते हैं, वे दुःखी ही हैं, उनमें (पुण्य में या पाप में) कहीं चैतन्यसुख का वेदन नहीं होता; इसलिये मोक्षार्थी-मुमुक्षु को उन दोनों में किंचित् अंतर मालूम नहीं होता, दोनों समान ही हैं; दोनों में सुख का अभाव है। जो जीव ऐसा नहीं मानता और पुण्य में या पुण्य के फलरूप इंद्रिय-विषयों में सुख मानता है, वह जीव मिथ्यात्वमोह से घिरा हुआ घोर संसार में परिभ्रमण करता है। और जो जीव पुण्य तथा पाप दोनों को विभावरूप से समान जानकर, उन दोनों से भिन्न प्रकार का ऐसा शुद्धभाव प्रगट करता है, वह जीव अल्पकाल में वीतराग होकर मोक्षसुख का अनुभव करता है।

# चैतन्यसुख को बाह्य विषयों की अपेक्षा नहीं है।

चैतन्य के आनंद का स्वाद जिसने नहीं चखा, उसी को राग में और बाह्य विषयों में सुख भासित होता है। बाह्य विषय, चाहे वे शुभ के निमित्त हों या अशुभ के निमित्त हों, उनमें कहीं भी धर्मी अपना सुख नहीं मानते। समवसरणादि संयोग शुभ के निमित्त हैं और स्त्री आदि संयोग अशुभ के निमित्त हैं—उनमें या उनकी ओर के रागभाव में धर्मी जीव कहीं सुख नहीं मानते, उनमें सुख है ही नहीं; चैतन्य का सुख चैतन्य से बाहर कैसे होगा? चैतन्यस्वरूपी आत्मा स्वयं सुखस्वभावी है, सुख के संवेदन के लिये उसे बाहर के किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं है।

अहा, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख, वह तो आत्मा का परम स्वभाव है; उस स्वभाव को जहाँ अंतर्मुख होकर स्वीकार किया, वहाँ अपने सुख का अपने में वेदन किया, अब वह धर्मी बाह्य में कहीं सुख की कल्पना नहीं करेगा। अंतर में ज्ञानकला जागृत हुई, वहाँ धर्मी की ज्ञानचेतना जगत के विषयों से विरक्त हो गई। अहा, चैतन्य का सुख चखानेवाले वीतराग के वचन वास्तव में अद्भुत हैं, अमृत से भी मीठे हैं; उनका रहस्य समझने से परम प्रसन्नता होती है, और आत्मा में से आनंद झरता है!

चैतन्य का सुख जाना, वहाँ धर्मी की पर्याय का वेग उस सुख की ओर मुड़ गया और संसार के दु:खों से उसकी पर्याय विमुख हो गई; इसका नाम संवेग और निर्वेद है। संसार से लौटकर सर्व राग से विमुख होकर अंतर में चैतन्य के सुख की ओर मोक्षमार्ग पर अग्रसर हुआ, उसे अब विशेष भव नहीं होते, वह अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करता है। धर्मी की अंतरंग दशा अलौकिक, अतीन्द्रिय होती है।

वीतराग की वाणी मोह को काटने के लिये तलवार की तीक्ष्ण धार समान है। एक चोट दो टुकड़े!—एक ओर अतीन्द्रिय चैतन्यसुखमय आत्मा और दूसरी ओर समस्त राग और विषय—इसप्रकार दोनों का सर्वथा भेदज्ञान करके जिनवचन विषयों का विरेचन कराते हैं और चैतन्यसुख का उत्साह जागृत करते हैं।—अहो, चैतन्य का सुख प्रदान करनेवाले ऐसे जिनवचन महान उपकारी हैं।

चैतन्य के विषयातीत सुख के निकट चक्रवर्तीपद के निधान का भी कोई मूल्य नहीं है। कोई धर्मात्मा स्त्री आदि के संयोगों में बैठा हो, तथापि चैतन्यसुख के समक्ष उसमें किंचित् सुख नहीं मानता; और कोई अज्ञानी स्त्री आदि का संयोग छोड़कर त्यागी हुआ हो, तथापि चैतन्य स्वाद के बिना उसे राग में और संयोग में सुख का अभिप्राय बना रहता है;—ज्ञानी और अज्ञानी के अभिप्राय का यह महान अंतर अज्ञानी-बाह्यदृष्टि कैसे जान सकते हैं ? वीतराग की वाणी समझे और विषयसुख की रुचि रहे, ऐसा नहीं हो सकता। जहाँ विषयों में सुखबुद्धि है, वहाँ वीतराग की वाणी का ज्ञान नहीं है, और वीतरागवाणी की समझ है, वहाँ विषयों में सुखबुद्धि नहीं रहती; वहाँ तो चैतन्य का अमृत झरता है। इसलिये कहा है कि—अहो, जिनवचन परम अमृतरूप हैं, वे विषयसुखों का विरेचन करानेवाले हैं और सर्व दु:खों का क्षय कराके आत्मा को मोक्षसुख प्राप्त कराते हैं।

अहो, सर्वज्ञदेव के अमृतरस-भरपूर वीतराग वचन। वे कानों में पड़ते ही जीव को पाँचों इंद्रियों के प्रति उदासीन करके अतीन्द्रिय सुख की ओर उल्लसित करते हैं, अर्थात् स्वोन्मुखता कराके परोन्मुखता छुड़ाते हैं... अंदर चैतन्य के अतीन्द्रिय स्वभाव में प्रवेश कराते हैं। भाई! तुझे आनंद का स्वाद लेना हो तो अंतर में आपने आनंदस्वभाव के निकट जा। पर विषयों की ओर जाने से तो तुझे दु:ख होगा।

धर्मी जिनवचन से स्वसन्मुख होकर जानता है कि—आनंद का जो वेदन हुआ, वह मैं ही हूँ; शुद्धपर्याय अभेदरूप से आत्मा ही है; आनंदामृत का स्वाद आया, वहाँ पूर्ण आनंदस्वरूप आत्मा मैं ही हूँ, ऐसी प्रतीति हुई।—ऐसी सम्यग्दृष्टि की अपूर्व दशा है। उसकी आनंदमय चेतना में कर्म का कर्तृत्व या कर्मफल का भोक्तृत्व नहीं है। ऐसी ज्ञानचेतना का अपूर्व स्वाद ही परमागम का सच्चा प्रसाद है।

अहा, जो चेतना राग से पृथक् हुई, उस ज्ञानचेतना में तो सर्वज्ञ परमात्मा विराजते हैं, तीनकाल को जाननेवाले सर्वज्ञ उसकी प्रतीति में विराजते हैं, उसे सर्वज्ञ का विरह नहीं है। जगत में सर्वज्ञ सदा सत् हैं, त्रिकाल के ज्ञाता सर्वज्ञ का विरह तीनकाल में नहीं है, अज्ञानी उन्हें नहीं जानता। ज्ञानी उन सर्वज्ञ का स्वरूप जानकर स्वयं शुद्धचेतनारूप परिणमित होता हुआ सर्वज्ञता को साधता है। अहो, ज्ञानस्वभाव! उसमें तो जगत का नियम समा जाता है। ऐसा

सर्वज्ञ ज्ञानस्वभाव जिसके हृदय में जम गया, वह तो केवली भगवान का पुत्र हुआ। अनंतकाल में नहीं आया ऐसा अपूर्व आनंद उसे अनुभव में आता है।

अरे भाई, जगत का जंजाल छोड़कर आत्मसाधना का यह अवसर आया है। जिनवर का ऐसा मार्ग! जिसमें संदेह का कोई स्थान नहीं है, उसे महाभाग्य से प्राप्त करके तू आत्महित में लग... दुनिया के जीव मानें या न मानें उसके साथ तुझे कोई संबंध नहीं है। अरे, दुनिया को दुनिया में रहने दे और तू आत्मा के निकट आ!.... तेरा आनंद तेरे आत्मा में है, दुनिया के पास कहीं तेरा आनंद नहीं है।

अहा, समयसार तो समयसार है! ...आचार्यदेव ने इसमें अनुभव का आनंद भरा है! सर्वज्ञ और गणधरों ने जिस आनंद का अनुभव किया, वीतरागी संतों ने निजवैभव से आत्मा के महान आनंद का जो स्वसंवेदन किया, उसी की वानगी इस समयसार में है। वैसे ही आनंद का अनुभव निजवैभव की प्रतीति होने पर सम्यग्दृष्टि को होता है। आचार्यदेव कहते हैं कि—अहा! हे भव्य जीवों! तुम आत्मा के ऐसे शांत अमृतरस का अभी से लेकर सदाकाल पान करो। इसके वेदन से आत्मा को परम तृप्ति होती है।

जो चेतना को राग में तन्मय होकर अनुभवता है, वह जीव अपराधी है, वह संसाररूपी जेल में जाता है; और जो चेतना को राग से अत्यंत भिन्नरूप अनुभवता है, वह जीव निरपराध है—निर्दोष है, वह संसार की जेल में नहीं जाता, परंतु संसार से मुक्त होता है। अरे, यह संसार के प्रपंच और दुःख; उनसे छूटने के लिये तू ज्ञानचेतना का अनुभव कर। ज्ञानचेतना के बिना चैतन्य की शांति का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

यह तो अंतर की बात है... अंतर में प्रेम अत्यन्त होना चाहिये। जैसी बाहर की प्रीति की है, वैसी अंतर की प्रीति नहीं करता; यदि चैतन्य की यथार्थ महिमा जाने तो उसकी परम प्रीति जागृत हो और बाह्य में सबकी महिमा छूट जाए। उसे स्वसन्मुखता से आत्मा के अपूर्व आनंद सहित सम्यग्दर्शन हो। यह जो सम्यग्दर्शन है, वह निश्चय से आत्मा ही है; आत्मा के परिणाम आत्मा से भिन्न नहीं हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन को हे भव्य जीवो! तुम भाव से धारण करो!—ऐसा भगवान जिनदेव के परमागम का उपदेश है।

जय महावीर!

# वीर की संतान

[वीर की संतान कैसी होती है ?—वह पढ़िये]

**''हे वीर जननी! पुत्र अब जाता है मुक्तिधाम में,**
**माता न दूजी करूँगा, नहिं आऊँगा संसार में॥''**

अरे, चौरासी के चक्कर में भ्रमण करते हुए जीव को कहीं सुख नहीं है; धर्मात्मा पुत्र—जिसने आत्मा को जाना है और संसार से विरक्त हुआ है—वह अपनी माता से कहता है कि—हे माता! इस संसार में मुझे कहीं चैन नहीं है; यह संसार क्लेश और दु:ख से भरपूर है, इससे अब मैं छूटना चाहता हूँ। इसलिये हे माता! मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दो! अब इस संसार में दूसरी माता नहीं करूँगा।—इसप्रकार वैराग्यवान धर्मात्मा आत्म-साधना हेतु निकल पड़ते हैं। जिसे अंतर में राग से भिन्न आत्मा का अनुभव है, उसकी यह बात है। अंतर में जिसने मोक्ष का मार्ग देखा है, वह उसे साधता है।

❀ ❀ ❀

आठ-आठ वर्ष के राजकुमारों को आत्मप्रतीतिपूर्वक वैराग्य होने पर जब आनंद में लीनता की भावना जागृत होती है, तब माता के पास जाकर कहते हैं कि—हे माता! मैं दीक्षा लेने जाता हूँ... आत्मा के आनंद का धाम अंतर में देखा है, उसे साधने के लिये जाता हूँ, इसलिये मुझे आज्ञा दो! माता के नेत्रों से आँसू की धारा बहती है और पुत्र के रोम-रोम में वैराग्य की छाया छा गई है; वह कहता है कि—अरे माता! तू मुझे जननी होने के नाते सुखी करना चाहती है तो मैं अपने सुख की साधना के लिये जाता हूँ; तू मेरे सुख में बाधक न हो, तू दु:खी होकर मुझे आत्मानंद की प्राप्ति में विघ्न मत कर। हे माता! मुझे हर्षपूर्वक आज्ञा दे! मैं आत्मानंद में लीन होने जाता हूँ।

तब माता भी धर्मात्मा पुत्र से कहती है कि—बेटा! तेरे सुख के मार्ग में मैं बाधा नहीं बनूँगी; तेरे सुख का जो मार्ग है, वही हमारे सुख का है। माता की आँखों से आँसू की धारा

बहती है, तथापि वैराग्यपूर्वक कहती है कि—हे पुत्र! तू आत्मा के परम आनंद की प्राप्ति के लिये जा रहा है, इसलिये मैं तुझे नहीं रोकूंगी... मुनि होकर आत्मा के परमानंद की साधना के लिये तेरा आत्मा तत्पर हुआ है, उसका मैं अनुमोदन करती हूँ; बेटा! तू आत्मा के निर्विकल्प आनंदरस का पान कर... हमें भी वही करना योग्य है। हमारा भाग्य धन्य है कि हमारा पुत्र केवलज्ञान और सिद्धपद को प्राप्त करेगा!—इसप्रकार माता, पुत्र को आज्ञा देती है।

अहा! आठ वर्ष का सुकोमल राजकुमार जब माता से इसप्रकार दीक्षा की आज्ञा माँगता होगा, और माता जब वैराग्यपूर्वक उसे सुख के पंथ पर विचरने की आज्ञा देती होगी—वह प्रसंग और वह दृश्य कैसा होगा!

और जब वह छोटा-सा राजकुमार दीक्षा लेकर मुनि बनता होगा, हाथ में मोरपींछी और कमंडल लेकर निकलता होगा, तब तो ऐसा लगता होगा मानो छोटे-से सिद्ध भगवान ऊपर से उतरे हों! धन्य है वैराग्य का अद्भुत दृश्य! धन्य है वह मुनिदशा!

## हे जीव! तू मोक्षमार्ग में आ!...

श्रीगुरु समझाते हैं कि—हे भव्य! आत्मानुभव के लिये सावधान होना... शूरवीर बनना... प्रतिकूलता की ओर मत देखना, शुद्ध आत्मा के आनंद की ओर देखना। शूरवीर होकर-उद्यमी होकर आनंद का अनुभव करना। 'प्रभु का मारग है वीरोका...; वे प्रतिकूलता में या पुण्य की मिठास में नहीं अटकते; उन्हें तो एक अपने आत्मार्थ का ही काम है। वे भेदज्ञान द्वारा आत्मा को बंधन से सर्वप्रकार भिन्न अनुभवते हैं। ऐसा अनुभव करने का यह अवसर है... इसलिये हे भाई! शांतिपूर्वक अपनी चेतना को अंतर में एकाग्र करके त्रैकालिक चैतन्यप्रवाहरूप आत्मा में मग्न कर... और रागादि समस्त बंधभावों का चेतन से भिन्न अज्ञानरूप जान।—ऐसे सर्वप्रकार से भेदज्ञान करके अपने एकरूप शुद्ध आत्मा को साध... मोक्ष को साधने का यह अवसर है।

वीतराग का मार्ग जगत से भिन्न है। जगत का महाभाग्य है कि संतों ने ऐसा मार्ग प्रकाशित किया है। ऐसा मार्ग प्राप्त करके हे जीव! भेदज्ञान द्वारा शुद्ध आत्मा का अनुभव करके तू मोक्षमार्ग में आ!....

# स्वानुभूति का सुंदर वर्णन

[ मुमुक्षु के लिये अत्यंत उपयोगी सुंदर लेख ]

सम्यग्दृष्टि शुभाशुभ परिणाम में वर्तता हो, तब भी उसकी शुद्धात्मप्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन लगातार बना रहता है। सम्यग्दृष्टि भी कभी-कभी स्वरूप का ध्यान करता है; वह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा 'निर्विकल्प आत्मध्यान' किसप्रकार करता है तथा स्वरूप का चिंतन किसप्रकार करता है, स्वरूप का चिंतन करने से क्या होता है, और जिज्ञासु को भी स्वरूप के ध्यान के लिये कैसा उद्यम और कैसी पूर्व-विचारणा होनी चाहिये—तत्संबंधी यह लेख प्रत्येक मुमुक्षु को मननीय है।

सम्यग्दृष्टि कदाचित् स्वरूपध्यान करने का उद्यमी होता है। वहाँ प्रथम 'स्व-पर स्व-रूप-का भेदविज्ञान' करे। नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्मरहित चैतन्यचमत्कारमात्र अपना स्वरूप जाने, फिर 'पर' का विचार भी छूट जाये और केवल स्वात्मविचार ही रह जाय; तब निज स्वरूप में अनेक प्रकार की अहंबुद्धि धारण करता है: 'मैं चिदानंद हूँ, शुद्ध हूँ' इत्यादि विचार होते सहज ही आनंद तरंग उठती है, रोमांच होता है। इसके बाद ऐसे विचार भी छूट जायें और स्वरूप केवल 'चिन्मात्र' भासित होने लगे, तब सर्व परिणाम उसरूप से एकाग्र हो प्रवर्तते हैं; दर्शन-ज्ञानादिक के वा नय-प्रमाणादि के विचार भी विलीन हो जाते हैं। सविकल्प-चैतन्यस्वरूप द्वारा जो निश्चय किया था, उसमें ही व्याप्य-व्यापकरूप होकर ऐसा प्रवर्तता है कि वहाँ ध्याता-ध्येयपना भी दूर हो जाता है। ऐसी दशा का नाम 'निर्विकल्प अनुभव' है।

देखो, यह स्वानुभव की अलौकिक चर्चा। यहाँ तो एक बार जिसको स्वानुभव हुआ हो और फिर से वह स्वानुभव करे, उसकी बात है; परंतु प्रथम बार जो 'निर्विकल्प स्वानुभव' का उद्यम करता है, वह भी इसीप्रकार भेदज्ञान और स्वरूपचिंतन के अभ्यास द्वारा परिणाम को निजस्वरूप में तल्लीन करके स्वानुभव करता है। इस निर्विकल्प अनुभव के समय आत्मा स्वयं अपने में व्याप्य-व्यापकपने से ऐसा तल्लीन प्रवर्तता है, अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय की

ऐसी एकता होती है कि ध्याता-ध्येय के भेद भी उसमें रहते नहीं; आत्मा स्वयं अपने में लीन होकर स्वयं का स्वानुभव करता है। स्वानुभव के परम आनंद का 'अनुभव' होता है, उसका 'विकल्प' नहीं। एक बार ऐसा 'निर्विकल्प अनुभव' जिसको हुआ हो, उसको ही निश्चय सम्यक्त्व जानना। यह अनुभव की रीति यहाँ बतलाते हैं।

यहाँ सम्यग्दृष्टि किसप्रकार निर्विकल्प अनुभव करते हैं, यह बतलाया है। उसके उदाहरण से—प्रमाण से दूसरे जीवों को भी निर्विकल्प अनुभव करने का यही उपाय है-ऐसा समझ लेना।

सम्यग्दृष्टि को शुभाशुभराग के समय सविकल्पदशा में सम्यक्त्व किसप्रकार वर्तता रहता है, यह समझाया। अब कहते हैं कि 'वह सम्यग्दृष्टि कदाचित् स्वरूपध्यान करने को उद्यमी होता है।' चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को बारंबार स्वरूपध्यान नहीं होता, लेनिक कभी शुभाशुभ प्रवृत्ति से दूर हो, शांत परिणाम द्वारा स्वरूप का ध्यान करने का उद्यम करता है। जिस स्वरूप का अपूर्व स्वाद स्वानुभव में चखा है, उसको पुनः पुनः अनुभव करने के लिये वह उद्यम करता है। तब प्रथम तो स्व-पर के स्वरूप का भेदविज्ञान करे, अर्थात् पहिले जो भेदविज्ञान किया है, उसको पुनः चिंतन में ले, ये स्थूल-जड़ देहादि तो मेरे से स्पष्ट भिन्न हैं, उनके कारणरूप अंदर का सूक्ष्म 'द्रव्यकर्म', वह भी आत्मस्वरूप से अत्यंत जुदा है, दोनों की जाति ही जुदी है; 'मैं चैतन्य और यह जड़, मैं परमात्मा और यह परमाणु'। ऐसे दोनों की भिन्नता है, और भिन्न होने से वह द्रव्यकर्म मेरा कुछ करता नहीं। अब अंदर आत्मा की पर्याय में उत्पन्न होनेवाले जो राग-द्वेष-क्रोधादि भावकर्म, उससे भी मेरा स्वरूप अत्यंत जुदा है; मेरे ज्ञानस्वरूप को और इन रागादि परभावों की जाति ही भिन्न है; राग का वेदन तो आकुलतारूप है और ज्ञान का वेदन शांतिमय है। इस तरह अनेक प्रकार से द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से स्वयं के स्वरूप की भिन्नता का चिंतन करे। यह सबसे भिन्न 'चैतन्यचमत्कार मात्र ही' मैं हूँ-ऐसा विचार करे। देखो, ऐसे वस्तुस्वरूप के निर्णय में ही जिसकी भूल हो, उसको तो स्वरूप के ध्यान का सच्चा उद्यम ही नहीं होगा, लेकिन जिसका ध्यान करना है, उसको पहिले पहिचानना तो चाहिये न! पहिचान बिना ध्यान किसका? इस तरह स्व-पर की भिन्नता के विचार से परिणाम को जरा स्थिर करे, फिर पर के विचार छूटकर केवल निज स्वरूप के ही

विचार रहें। जो स्वरूप पहिले अनुभव में लिया है, उसकी अत्यंत महिमा ला-लाकर उसके विचार में मन को एकाग्र करता है। परद्रव्यों में से और परभावों में से तो अहंबुद्धि छोड़ी है और निज स्वरूप को ही स्वयं का जानकर उसमें ही अहंबुद्धि की है। 'मैं चिदानंद हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं सहज सुखस्वरूप हूँ, अनंत शक्ति का निधान हूँ, सर्वज्ञस्वभावी हूँ' इत्यादि प्रकार से स्वयं के निज स्वरूप में ही अहंबुद्धि कर-करके उसी का चिंतन करता है। 'नियमसार' में प्रभु कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि—

**कैवल्यदर्शन-ज्ञान-सुख केवल्यशक्ति स्वभाव जो।**
**मैं हूँ वही यह चिंतवन होता निरंतर ज्ञानि को॥96॥**

**निजभाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहि।**
**देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिंतन यही॥97॥**

अर्थ—केवलज्ञान-दर्शनस्वभावी, सुखमय और केवलशक्तिस्वभावी वह मैं हूँ—ऐसा ज्ञानी चिंतवन करता है॥96॥ 'जो निजभाव को छोड़ता नहीं, तथा परभाव को किंचित् भी ग्रहण नहीं करता, सर्व को जानता-देखता है, वह मैं हूँ—ऐसा ज्ञानी चिंतवन करता है। यहाँ परम भावना के सन्मुख ऐसे ज्ञानी की शिक्षा दी है।'

ऐसे निज आत्मा की भावना करने की मुमुक्षु को सीख दी है और कहा है कि ऐसी भावना के अभ्यास से मध्यस्थता होती है, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी ऐसी ही निजात्म भावना से प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन पश्चात् तथा सम्यग्दर्शन करने के लिये ऐसी ही भावना और ऐसा चिंतन करना योग्य है। 'सहज शुद्धात्मा की अनुभूति-जितना ही मैं हूँ, अपने स्वसंवेदन में आता हूँ, यही मैं हूँ'—ऐसे सम्यक् चिंतन में सहज ही आनंद-तरंग उठती है।

देखो तो सही, इसमें चैतन्य की अनुभूति के रस का कितना घोलन किया जाता है। ऊपर कहा वहाँ तक तो अभी सविकल्पदशा है। इस चिंतन में 'आनंद तरंग उठती है' अपनी अभी निर्विकल्प अनुभूति का आनंद नहीं, किंतु स्वभाव तरफ के उल्लास का आनंद है, शांत परिणाम का आनंद है; और उसमें स्वभाव तरफ के अतिशय प्रेम के लिये रोमांच होता है। रोमांच अर्थात् विशेष उल्लास; स्वभाव तरफ का विशेष उत्साह; जैसे संसार में भय का या आनंद का कोई विशिष्ट प्रसंग बनने पर रोम-रोम उल्लसित हो जाता है, उसको 'रोमांच हुआ'

ऐसा कहा जाता है, उसीप्रकार यहाँ स्वभाव के निर्विकल्प अनुभव के विशेष प्रसंग में धर्मी को आत्मा के असंख्य प्रदेश में स्वभाव के अपूर्व उल्लास का रोमांच होता है। बाद में चैतन्यस्वभाव के रस की उग्रता द्वारा यह विचार (विकल्प) भी छूट जाता है और परिणाम अंतर्मग्न होने पर केवल चिन्मात्र स्वरूप भासित होने लगता है, अर्थात् सारे परिणाम, स्वरूप में एकाग्र होकर प्रवर्तते हैं। जब उपयोग स्वानुभव में प्रवर्तता है, तब निर्विकल्प आनंददशा अनुभव में आती है। वहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र संबंधी या नय-प्रमाण वगैरह संबंधी कोई विचार नहीं, सर्व विकल्प विलय हो जाते हैं। यहाँ स्वरूप में ही व्याप्य-व्यापकता है, अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों एकमेक-एकाकार अभेदपने से अनुभव में आते हैं। अनुभव करनेवाली पर्याय स्वरूप में व्याप्त हो गयी है, जुदी नहीं रही। 'परभाव' अनुभव से बारह रह गये, लेकिन 'निर्मल पर्याय' तो अनुभूति के साथ स्वरूप में मग्न हो गई।

पहिले विचार-दशा में ज्ञान ने जो 'स्वरूप' लक्ष्य में लिया था, उस स्वरूप में ज्ञान का उपयोग जुड़ गया, और बीच का 'विकल्प' निकल गया, अकेला ज्ञान रह गया, अर्थात् अतीन्द्रिय निर्विकल्प अनुभूति हुई, परम आनंद हुआ। ऐसी अनुभूति में प्रतिक्रमण, सामायिक प्रत्याख्यान आदि सब धर्म समा जाते हैं।

इस अनुभूति को ही 'जैनशासन' कहा है; यही वीतराग मार्ग है, यही जैनमार्ग है, यही श्रुत का सार है। संतों की और आगम की यही आज्ञा है। शुद्धात्म-अनुभूति की अपार महिमा है, उसको कहाँ तक कहें ? जो स्वयं ही अनुभूति करे, उसे उसकी खबर पड़े।

यह किसकी बात है ? गृहस्थ सम्यक्त्वी की बात है। जो अभी घर-कुटुम्ब-परिवार के बीच रह रहा है, व्यापार-धंधा-खान-पानादि के भाव आते हैं, फिर भी भेदज्ञान के बल से इन सबसे भिन्न ऐसे निज शुद्धात्मा को भी जानता रहता है। वह जीव उद्यम द्वारा बाहर के परिणाम को हटाकर, उपयोग को निजस्वरूप में जोड़ता है और निर्विकल्प अनुभव करता है। ऐसा अनुभव चारों गति के जीवों को (तिर्यंच और नारकी को या) हो सकता है। पहिले जिसने सत्य तत्त्वनिर्णय किया हो, वीतरागी-गुरु-धर्म की पहिचान की हो, नवतत्त्वों में विपरीतता दूर की हो, पर्याय में आस्रव-बंधरूप विकार होता है, शुद्धद्रव्य के आश्रय से उसे टालकर शुद्धात्म अनुभूति से संवर-निर्जरारूप शुद्धदशा प्रगटायी हो—उसे अनेकांत द्वारा द्रव्य-पर्यायों के सब

पक्षों के ज्ञानपूर्वक 'शुद्ध अनुभव' होता है। दूसरे लोग जो शुद्ध अनुभव की बात करते हैं, उसमें और जैन के शुद्ध अनुभव में बड़ा अंतर (फर्क) है; दूसरे लोग तो 'पर्याय में अशुद्धता थी और फिर बाद में शुद्धता हुई' उसका स्वीकार किये बिना एकांत शुद्धता ही की बात करते हैं, लेकिन शुद्ध पर्याय के बिना ऐसा शुद्ध अनुभव होता नहीं। जैन का 'शुद्ध अनुभव' तो शुद्ध पर्याय के स्वीकार सहित है। 'पहिले अशुद्धता थी, वह टलकर शुद्धपर्याय होती है' उसकी प्राप्ति नहीं की, उस संबंध में प्रश्न है कि शुद्धता का अनुभव किया किसने? और इस अनुभव का फल किसमें आया? द्रव्य और पर्याय इन दोनों के स्वीकाररूप अनेकांत के बिना अनुभव और अनुभव का फल, यह कुछ नहीं बन सकता। 'पर्याय' अंतर्मुख होकर जब शुद्ध स्वभाव का आराधन-सेवन-ध्यान करे, तब ही 'शुद्ध अनुभव' होता है।

यह शुद्ध अनुभव अर्थात् 'निर्विकल्प अनुभव' क्या चीज़ है और कैसी यह अंतरदशा है! यह जिज्ञासु को लक्षगत करना चाहिये। अहा, निर्विकल्प अनुभव का कथन करने की वाणी की शक्ति नहीं; ज्ञान में उसको जानने की शक्ति है। वह अंदर वेदन में आता है, लेकिन वाणी में यह पूरा नहीं आता; ज्ञानी को भी वाणी में इसका मात्र संकेत आता है। अरे, जो विकल्प को भी गम्य नहीं होता, ऐसा 'निर्विकल्प अनुभव' वाणी से किसप्रकार गम्य हो? वह तो स्वानुभवगम्य है।

कोई सज्जन मिश्री (शर्करा) का मीठा स्वाद लेते हों, वहाँ कोई दूसरा व्यक्ति जिज्ञासपूर्वक उस मिश्री खानेवाले को देखे अथवा उसके पास से मिश्री के मीठे स्वाद का वर्णन सुने, तो उससे कुछ उसके मुँह में मिश्री का स्वाद आ नहीं जाता; स्वयं मिश्री का टुकड़ा लेकर मुँह में रखकर चूसे, तब ही उसको मिश्री के मीठे स्वाद का अनुभव होता है; वैसे ही कोई सज्जन अर्थात् संत-धर्मात्मा-सम्यग्दृष्टि निर्विकल्प स्वानुभव में अतीन्द्रिय आनंद का मीठा स्वाद लेता हो, वहाँ दूसरे जीव जिज्ञासापूर्वक उस अनुभवी धर्मात्मा को देख और उसके निकट प्रेमपूर्वक वह अनुभव का वर्णन सुनें तो उससे कुछ उनको निर्विकल्प अनुभूति का स्वाद नहीं आ जाता। यदि जीव स्वयं शुद्धात्मा को लक्ष्य में ले, उसको ही मुख्य करके जब अंतर्मुख उपयोग द्वारा स्वानुभव करे, तब ही उसको शुद्धात्मा के निर्विकल्प अनुभव के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद वेदन में आता है। ऐसा स्वानुभव होने पर सम्यग्दृष्टि जानता है कि अहा! मुझे मेरी

वस्तु प्राप्त हुई। अपने में ही रही हुई अपनी वस्तु को मैं भूल गया था, वह धर्मात्मा गुरुओं के अनुग्रह से मुझे प्राप्त हुई। स्वयं की वस्तु स्वयं में ही है, वह निजध्यान द्वारा प्राप्त होती है, बाहर के किसी रागादिभाव द्वारा वह प्राप्त नहीं होती अर्थात् अनुभव में नहीं आती। सविकल्प द्वार से वह निर्विकल्प में आई–ऐसा उपचार से कहा जाता है। स्वरूप के अनुभव का उद्यम करते-करते पहिले उसके सविकल्प विचार की धारा छूटती है, उसमें सूक्ष्म राग और विकल्प होते हैं, लेकिन विकल्पों के द्वारा स्वानुभव नहीं होता अर्थात् विकल्प को साधन बनाकर कहीं स्वानुभव में नहीं पहुँच जाता। राग को और विकल्पों को लांघकर सीधे आत्मस्वभाव को अवलंबन में लेकर उसको ही साधन बनाये, तभी आत्मा का निर्विकल्प स्वानुभव होता है; और तब ही जीव कृतकृत्य होता है। शास्त्रों ने उसकी अपार महिमा गाई है।

[सविकल्प में से निर्विकल्प अनुभव होने की जो बात कही, उस संबंध में अब शास्त्राधार देकर स्पष्टता करेंगे]

(पंडित टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी के प्रवचन में से—)

'मैं ज्ञाता हूँ'—ऐसा, ज्ञानसन्मुख होकर न परिणमे, रागादिक का कर्ता होकर परिणमे तो जीव क्रमबद्धपर्याय का ज्ञाता नहीं है। क्रमबद्धपर्याय का ज्ञाता तो ज्ञायक-सन्मुख रहकर रागादि को भी जानता ही है। उसके स्वभाव-सन्मुख परिणमन में शुद्धपर्याय ही होती जाती है।

आत्मा का 'ज्ञान' स्वभाव है, उसको लक्ष्य में लेकर तू विचार कि 'इस ओर मैं ज्ञायक हूँ-मेरा सर्वज्ञस्वभाव है' तो सामने ज्ञेयवस्तु की पर्याय क्रमबद्ध होगी अथवा अक्रमबद्ध? स्वयं के ज्ञानस्वभाव को सामने रखकर विचार किया जाय तो यह क्रमबद्धपर्याय की बात सरलता से बैठ जाये ऐसी है; लेकिन ज्ञानस्वभाव को भूलकर जो विचार करता है, उसे एक भी वस्तु का निर्णय नहीं हो सकता।

# महावीर भगवान का इष्ट उपदेश

## सर्व जीव-हितकारी भगवान महावीर का अनेकांत शासन

[ अनेकांत में अनंत गंभीरता विद्यमान है। ]

जगत के जीव या अजीव समस्त पदार्थों में अपने-अपने अनेक धर्म (अनंत धर्म) विद्यमान हैं, उनके अनेकांतस्वरूप को वीरप्रभु की वाणी प्रकाशती है। इस तरह प्रत्येक पदार्थ के स्वाधीन अनंत स्वभावों को जानते हुए और अपने आत्मा में विद्यमान अपने ज्ञानादि अनंत स्वभावों को जानते हुए, जीव को स्व-पर का भेदज्ञान होता है, उसे कहीं भी मोह नहीं रहता, और वह अपने निज-स्वभावरूप परिणमता है, निजस्वभावरूप परिणमन ही जीव का हित है, वही इष्ट है, और ऐसे इष्ट का उपदेश महावीर प्रभु के अनेकांत शासन में है और वह शासन सर्व जीवों का हितकारी है। भगवान का दिया हुआ इष्ट उपदेश कितना सुंदर है! वीरपुत्र गुरुदेव ने हमें समझाया है; उसका नमूना यहाँ दिया है। वीरप्रभु के ढाईहजारवें निर्वाणोत्सव का यह मंगल प्रसाद है।

(ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

### द्विस्वभावी वस्तु ( महावीरस्वामी का इष्ट उपदेश )

अनेकांतमय आत्मवस्तु का विवेचन करते हुए पूज्य स्वामीजी ने कहा कि—वस्तु में एक सामान्य स्वभाव और एक विशेष स्वभाव, अर्थात् एक द्रव्यस्वभाव और एक पर्यायस्वभाव—ऐसे दो स्वभाव एक साथ वर्तते हैं। उनमें सामान्यरूप ऐसा द्रव्यस्वभाव वह पर्याय का कारण नहीं है; परंतु विशेषरूप ऐसा पर्यायस्वभाव वह पर्याय का कारण है। सामान्य द्रव्यस्वभाव यदि स्वयं पर्याय का कारण हो तो वह सामान्यस्वभाव सदा एकरूप रहनेवाला होने से पर्याय में भी सदा एकरूपता ही होनी चाहिये। परंतु ऐसा नहीं है। पर्यायें विविध होती हैं और उनका कारण आत्मा का पर्यायस्वभाव है, उस-उस पर्यायरूप होने की योग्यतारूप

पर्यायस्वभाव है और एकरूप रहने की योग्यतारूप द्रव्यस्वभाव है।—इसप्रकार द्रव्य और पर्याय दोनों स्वभाव आत्मा में एकसाथ हैं, उन्हें जिनशासन अनेकांतस्वरूप से प्रकाशित करता है। ऐसा वस्तुस्वभाव जिसकी दृष्टि में आया, वह जीव भवचक्र से बाहर निकल गया।—यह महावीर भगवान का दिया हुआ इष्ट-उपदेश है।

अनेकांतस्वरूप आत्मा की प्रसिद्धि ही सर्व जिज्ञासुओं को उपकारी है।

निर्मल पर्याय से भिन्न कोई चैतन्यतत्त्व नहीं है; लोक-अलोक की भाँति कहीं द्रव्य और पर्याय भिन्न नहीं हैं; दोनों के असंख्यप्रदेश एक ही हैं, कहीं प्रदेशभेद नहीं है। आत्मा को द्रव्यअपेक्षा से ध्रुवता है और पर्यायअपेक्षा से परिणमन है—इस अपेक्षा द्रव्य और पर्याय के बीच कथंचित् भेद होने पर भी जिसप्रकार दो अंगुलियाँ एक-दूसरे से प्रदेशभेद से पृथक् हैं, तद्नुसार कहीं द्रव्य और पर्याय पृथक् नहीं हैं। भाई! निर्मल पर्याय को छोड़ने जायेगा तो उस पर्याय से भिन्न कोई (सर्वथा ध्रुव) आत्मवस्तु तुझे प्राप्त नहीं होगी। द्रव्य और पर्याय दोनों साथ अनुभव में आते हैं, परंतु उस अनुभूति में 'यह द्रव्य और यह पर्याय'—ऐसे भेद को वह स्पर्श नहीं करता; इसलिये अनुभूति में पर्याय का अभाव नहीं है। पर्याय तो अंतर्मुख एकाग्र हुई है, तब तो आत्मा अनुभव में आया है। अहो, आचार्यदेव ने दीपक की भाँति स्पष्ट वस्तुस्वरूप प्रकाशित किया है।

हे जीव! तेरी चैतन्यसत्ता की सीमा तेरी पर्याय तक है; तेरी पर्याय से बाहर अन्य वस्तु में तेरी सत्ता नहीं है; परंतु तेरी पर्याय कहीं तेरी सत्ता से भिन्न नहीं है। तेरे अनंतगुणों का सत्त्व पर्याय में निर्मलरूप से उल्लसित हो रहा है, वह तू ही है, वह कहीं तुझसे कोई अन्य नहीं है। हाँ, अकेली पर्याय जितना संपूर्ण आत्मा नहीं है परंतु ध्रुवस्वभाव तथा पर्यायस्वभाव, ऐसे दोनों स्वभावरूप आत्मतत्त्व अनुभव में आता है। पर्याय को अर्थात् चैतन्यपरिणति को अस्वीकार करनेवाला जीव ध्रुवस्वभाव को भी स्वीकार नहीं कर सकता। निर्मलपर्याय में ध्रुवस्वभाव का स्वीकार और ध्रुवस्वभाव के स्वीकार में निर्मल चैतन्यपर्याय का स्वीकार—इसप्रकार अनेकांत के बल से वस्तु के दोनों स्वरूप का स्वीकार एकसाथ हो जाता है और ऐसी वस्तु का अनुभव करनेवाला जीव ही धर्मात्मा है, वही अनेकांतवादी जैन है! ऐसा अनेकांतमार्ग ही भगवान महावीर प्रभु का मार्ग है। अहो, अनेकांत में तो अनंत गंभीरता भरी है।

आत्मा का अनित्यपना होता है अनित्य पर्याय आत्मा में होती है?—यह बात सुनकर

एक वेदांती साधु भड़क उठे और यह कहकर चल दिये कि—अनित्य की बात हमें नहीं सुनना। अरे भाई! महावीर परमात्मा का अनेकांत शासन द्रव्य-पर्यायरूप वस्तुस्वरूप को बतलाता है, उसे समझना अज्ञानी को मुश्किल लगता है। जो वस्तु नित्य, वही वस्तु अनित्य!—ऐसा आश्चर्य और शंका उसे होती है। परंतु वस्तु स्वयं ही अपने को नित्य तथा अनित्य ऐसे अनेकांतस्वरूप से प्रकाशित कर रही है, उसे समझनेवाला ज्ञानी तो जानता है कि—अहा, पर्यायरूप से मेरी अनित्यता होने पर भी मैं द्रव्यरूप से नित्यस्थायी हूँ। मेरा नित्य ज्ञान वह अनित्यता से व्याप्त होने पर भी वह मुझे उज्ज्वल स्वरूप से अनुभव में आता है। अनित्यपना, वह कोई ज्ञान की उपाधि नहीं है परंतु ज्ञान का सहजस्वरूप ही है। नित्यपना और अनित्यपना ऐसे दोनों स्वभावधर्म ज्ञान में एकसाथ उल्लसित हो रहे हैं। अहो, ऐसा स्वरूप धर्मी अपने अंतर में अनुभवता है। वह कहीं अपने को चैतन्यपरिणाम से भिन्न नहीं अनुभवता, परंतु ध्रुव और पर्याय ऐसे दोनों स्वभावों से अभिन्न एकाकार चैतन्यभावरूप अनुभवता है। ऐसे अनुभव में भगवान आत्मा सत्यस्वरूप से प्रसिद्ध हुआ है।

## वीरप्रभु के मार्ग में तत्त्वों की स्वतंत्रता

सम्यग्दर्शनादि भाव और रागादि भाव साधक को एक ही काल में होते हैं, इसलिये उन दोनों भावों का स्वकाल एक है, तो फिर रागादि के कारण सम्यग्दर्शन हो या सम्यग्दर्शन के कारण रागादि हों—यह बात नहीं रहती। अन्य प्रकार से कहा जाये तो सम्यग्दर्शनादि भाव, वह निश्चयमोक्षमार्ग और उनके साथ के रागादि को भी मोक्षमार्ग में कहना, वह व्यवहार;—वे निश्चय-व्यवहार एक-दूसरे के कारण नहीं हैं; दोनों का स्वकाल एक होने पर भी, एक के कारण दूसरे का अस्तित्व नहीं है।—इसप्रकार स्वतंत्र तत्त्वों को ज्यों का त्यों जानना, वह वीरनाथ का अनेकांतमार्ग है।

## जैनमार्ग में सर्व निमित्त धर्मास्तिकायवत् अकिंचित्कर हैं

जिसप्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों स्वतंत्र हैं, उसीप्रकार जैनमार्ग में उपादान और निमित्त भी एकसाथ एक काल में होने पर भी दोनों स्वतंत्र अपने-अपने अस्तित्व में वर्तते हैं; निमित्त का अस्तित्व उपादान के कारण नहीं है और उपादान का अस्तित्व निमित्त के कारण नहीं है; दोनों के षट्कारक अपने-अपने में हैं। जिसप्रकार जीव की गति में धर्मास्तिकाय निमित्त है, तथापि वहाँ जीव और धर्मास्ति दोनों वस्तुएँ भिन्न-भिन्न हैं, दोनों के छह कारक

एक-दूसरे से भिन्न हैं; जीव के कारण धर्मास्ति नहीं है और धर्मास्ति के कारण जीव नहीं है। उसीप्रकार जगत के जो निमित्त धर्मास्तिकायवत् हैं, वे सर्व निमित्त, उपादान से पृथक् हैं; उपादान और निमित्त दोनों पदार्थ अपने-अपने में स्वतंत्र कार्य करते हैं; एक के कारण दूसरे का अस्तित्व नहीं है। वस्तु का ऐसा स्वरूप जानकर भेदज्ञान हुआ, वह महावीरप्रभु का मार्ग है, वही मोक्ष का पंथ है।

## अनेकांतरूप वस्तु में पर का अवलंबन नहीं है, स्वाधीनता है।

वस्तु अनेकांतस्वरूप है अर्थात् द्रव्य-पर्यायस्वरूप है; आत्मा के द्रव्य और पर्याय, वे दोनों चैतन्यलक्षण से लक्षित हैं। ऐसी वस्तु को अनुभवने पर वीतरागी आनंद का अनुभव होता है। स्वभावोन्मुख जीव को विश्वास होता है कि—अपने स्वभाव के अनुभव में मुझे किसी राग का या निमित्त का अवलंबन नहीं है, उसका अवलंबन तो छूट गया है। वस्तु का अपना स्वरूप ही ऐसा है, वह किसी अन्य के द्वारा किया हुआ नहीं है। द्रव्य और पर्याय दोनों अपने स्वरूप से ही वास्तव में सत् हैं; उनमें जिसप्रकार द्रव्य अन्य के कारण नहीं है, उसीप्रकार पर्याय भी अन्य के कारण नहीं हैं। ऐसे वस्तुस्वरूप का निर्णय करनेवाला अन्य किसी के अवलंबन की आशा रखे बिना, स्वाधीनरूप से अपने स्वभाव में परिणमित होता है।

## ज्ञानलक्षण ने क्या प्रसिद्ध किया ?

## [ जहाँ लक्षण है, वहाँ लक्ष्य अवश्य है ही ]

ज्ञान और आत्मा को अभेदरूप अनुभवने से सम्यग्दर्शन होता है और तब खबर पड़ती है कि ज्ञानलक्षण द्वारा लक्षित ऐसा अखंड आत्मा, अनंत धर्मों से एकरूप है। ज्ञान के लक्ष्य में कहीं राग नहीं आता; राग का लक्षण तो बंधन है, राग का लक्षण कहीं ज्ञान नहीं है। ज्ञानलक्षण स्वयं रागरहित है, उस राग से भिन्न आत्मा को लक्षित करके उसका अनुभव कराते हैं।

ज्ञान जहाँ शुद्धज्ञानरूप से अनुभव में आया, वहाँ लक्ष्यरूप पूर्ण अनंत धर्मस्वरूप आत्मा भी अभेदरूप से अनुभव में आता ही है। ज्ञानलक्षण अपने लक्ष्य से अभेद है; ज्ञानलक्षण से भिन्न अन्य कोई लक्ष्य नहीं है। समझने में लक्षण-लक्ष्य के भेद बीच में आ जाते हैं, परंतु भेद रहे, तब तक लक्ष्यरूप आत्मा अनुभव में नहीं आता, और ऐसे अनुभव रहित अज्ञानी जीव ज्ञानलक्षण को भी नहीं जानता, वह तो विजातीय ऐसे रागादि भावों को चैतन्य-लक्षण में मिला

देता है, इसलिये सच्चे लक्ष्य-लक्षण को वह नहीं जानता। लक्षण से उसका लक्ष्य छुपा नहीं रह सकता; भिन्न नहीं रह सकता। लक्षण पर्याय स्वयं अंतर्मुख लक्षण में अभेद होकर आत्मा को अनुभवती है। उस अनुभूति में 'यह लक्ष्य और यह लक्षण' ऐसे भेद का कोई विकल्प नहीं है, वहाँ तो लक्ष्य-लक्षण दोनों अभेदस्वरूप से एकाकार अनुभव में आते हैं। ऐसा अनुभव, वह सम्यग्दर्शन है, उसमें भगवान आत्मा प्रसिद्ध हुआ है।

राग से विलक्षण ऐसा ज्ञानलक्षण जहाँ स्वयं अपने वेदन से प्रसिद्ध हुआ—अनुभव में आया, वहाँ भगवान आत्मा भी अवश्य प्रसिद्ध हुआ है। ज्ञान का अनुभव हो और आत्मा का अनुभव न हो, ऐसा नहीं हो सकता; नहीं तो ज्ञान और आत्मा भिन्न सिद्ध होंगे! ज्ञान के साथ संपूर्ण आत्मा अविनाभूत है, पृथक् नहीं है।

ज्ञानलक्षण से जो कुछ लक्षित है, वह सब ज्ञान के अनुभव में समा जाता है, कुछ शेष नहीं रहता।

और उस ज्ञान के अनुभव में ज्ञान से विलक्षण (ज्ञानलक्षण रहित) ऐसे रागादि कोई भाव नहीं आते, वे तो ज्ञान के अनुभव से बाहर ही रहते हैं।

जब तक ज्ञान के साथ राग की—विकल्प की जरा भी मिलावट रहे, तब तक ज्ञान-लक्षण ज्ञानरूप से प्रसिद्ध नहीं होता; इसलिये आत्मा भी वहाँ प्रसिद्ध नहीं होता। अहा, लक्षण तो ऐसा अपूर्व है कि व्यवहार के समस्त राग-विकल्पों का छेदन-भेदन करके, ज्ञान से पृथक् करके, ज्ञान के साथ एकमेक ऐसे अनंत धर्मस्वरूप स्वयं अपने ही अनुभवता है। ऐसा अंतर्मुख ज्ञान, वह अनेकांत है, वह भगवान महावीर का मार्ग है।

मति-श्रुतज्ञान तत्त्व अंतर्मुख होकर आत्मारूप हो गये, रागरूप नहीं रहे; इसलिये राग के बंधन-रहित अबद्धस्वरूप आत्मा प्रगट अनुभव में आया। ऐसे अनुभव में समस्त जिनशासन का समावेश है; जिन भगवान के सर्व उपदेश का सार ऐसा आत्म-अनुभव करना है। उस अनुभव में ज्ञानपर्याय शुद्धआत्मा के साथ अभेद हुई और उदयभावों से पृथक् हो गई। उस अनुभव में ज्ञान के साथ अनंत धर्म सहित आत्मा परिणमित हो रहा है। आत्मा का कोई धर्म ज्ञानपरिणमन से भिन्न नहीं रह सकता, अनंत धर्म उसमें एकसाथ आ जाते हैं, इसलिये वह ज्ञान स्वयमेव अनेकांतस्वरूप से प्रकाशित होता है, उसमें महावीर का कहा हुआ समस्त जैनशासन आ जाता है। ऐसे जैनशासन को समझकर महावीर प्रभु का निर्वाण-महोत्सव मानना चाहिये। ●●

# वीर तीर्थंकर की बतलायी आत्मशक्ति

## ❋ अनेकांतस्वरूप से स्वयमेव प्रकाशित अनंतधर्मस्वरूप ज्ञानमात्र आत्मा ❋

अहा, यह समयसारादि परमागम तो भगवान की वाणी है; जो इस समयसार के भाव समझा, उसे तीर्थंकर की वाणी का विरह नहीं है; तीर्थंकरदेव ने वाणी में जो कहा, उसका सार इस समयसार में भरा है और ऐसा समयसार यहाँ परमागम मंदिर में उत्कीर्ण हो चुका है। वाह! जिसमें जिनवाणी का निवास है, उसकी शोभा का क्या कहना! और उस जिनवाणी के साररूप शुद्धात्मा को जिसने स्वसंवेदन द्वारा अपने आत्मा में उत्कीर्ण कर लिया, वह जीव कृतकृत्य हो गया! ऐसे जीव की स्वानुभूति में कैसी अद्भुत आत्मशक्तियाँ उल्लसित होती हैं—उसका यह वर्णन है।

ज्ञानमात्र भाव आत्मा ज्ञानक्रियारूप से परिणमित होता है, उसमें उसके अनंत धर्मों का परिणमन साथ ही है; इसलिये आत्मा को ज्ञानमात्रपना कहने पर भी उसमें अनेकांत निर्बाधरूप से प्रकाशित होता है। ज्ञानमात्रभाव स्वयं अनंत धर्मस्वरूप है, उन धर्मों का वर्णन यहाँ आचार्यदेव अद्भुत-अलौकिक रीति से करना चाहते हैं; उसमें अनंत धर्मों में से यहाँ 47 शक्तियों का वर्णन किया है। उनमें सर्वप्रथम 'जीवत्वशक्ति' है।

### चैतन्यजीवन जीना ही मोक्ष का सच्चा महोत्सव मनाना है

जीवत्वशक्ति से आत्मा सदा जीवंत है... किसप्रकार जीता है? चैतन्यप्राण से सदा जीता है। अन्न से या शरीर से वह नहीं जीता, राग से भी नहीं जीता; इन सबसे छूट जाने पर भी चैतन्यप्राण से जीव स्वयं जीता है; ऐसी जीवत्वशक्ति ज्ञानभाव में साथ ही वर्तती है।

ऐसा चैतन्यजीवन महावीर भगवान ने बतलाया है। भगवान स्वयं ऐसा जीवन जीते हैं और दूसरों को वैसे जीवन का उपदेश दिया है। ऐसा जीवन जीना, वही महावीर प्रभु के मोक्ष का सच्चा महोत्सव मनाना है। महावीर प्रभु को और उनके उपदेश को जाने बिना मात्र बाह्य

धामधूम से महावीर प्रभु का सच्चा उत्सव नहीं मनाया जा सकता। शरीर से भिन्न-राग से भिन्न चैतन्यप्राणरूप जीवन जियो और दूसरों को ऐसा जीवन जीना समझाओ—यह महावीर का संदेश है; परंतु यह आत्मा परजीवों को जिला सकता है, ऐसा कहीं महावीर का उपदेश नहीं है।

चैतन्यशक्ति की साधना, वह महावीर प्रभु का मार्ग है। उस मार्ग में अर्थात् चैतन्यशक्ति की साधना में बीच में राग नहीं है। चैतन्यशक्ति के शुद्ध परिणमन में राग का समावेश नहीं होता। आत्मा ही उसे कहा है कि जो अपनी अनंत शक्ति सहित ज्ञानमात्रभावरूप परिणमित हो रहा है, उस परिणमन की अस्ति में रागादि परभावों की नास्ति है।

ज्ञानमात्रभाव में परिणमन करनेवाली अनंत शक्तियाँ—वे सब शुद्ध हैं; उनमें रागादि अशुद्धता का समावेश नहीं होता; रागादिभाव ज्ञानमात्रभाव से बाहर हैं। अहा, ऐसे अनेकांत का स्वरूप समझना, वह तो कोई अपूर्व बात है, और वही महावीर भगवान का मार्ग है।

## सच्चा आत्मा जीवन

**पर से जिये ऐसा पराधीन आत्मा नहीं है;**
**आत्मा तो स्वाधीन चैतन्यप्राण द्वारा जीनेवाला है।**

ज्ञानस्वरूप आत्मा के अनुभव का परिणमन होने से आत्मा का जीवन चैतन्यभावप्राणरूप हुआ, चैतन्यभाव से आत्मा जीवंत हुआ, अनंतगुणों का सच्चा जीवन पर्याय में प्रगट हुआ। ऐसा चैतन्यजीवन, वह धर्मी का आत्मजीवन है। शरीर में या राग में आत्मा का जीवन नहीं है; चैतन्यभाव में ही आत्मा का जीवन है।

ऐसे चैतन्यजीवन के कारण-कार्य आत्मा में ही हैं; उसे बाह्य कारण-कार्य के साथ संबंध नहीं है। आत्मा ऐसा तुच्छ नहीं है कि जिसे जीने के लिये जड़ शरीर की, पैसे की, आयुकर्म की या राग की आवश्यकता हो; उन सबके बिना अकेला अपने चैतन्यभाव से जिये—ऐसी आत्मा की जीवनशक्ति है। ऐसे आत्मा को ज्ञान में लेने पर पर्याय भी ऐसा आनंदमय-अतीन्द्रिय जीवन जीनेवाली हो गई; उसमें कहीं भी शरीर के साथ, धन के साथ,

राग के साथ, कर्म के साथ एकता नहीं रही, किंतु उनसे भिन्न वह चैतन्यभावरूप हो गई।—ऐसा जीवन वह धर्मी का जीवन है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती धर्मात्मा से लेकर सिद्धपरमात्मा तक सर्व जीव ऐसा जीवन जीते हैं।

—ऐसी जीवत्वशक्तिवान आत्मा ज्ञान लक्षण से लक्षित है।

जहाँ जीवत्वशक्तिवान आत्मा का स्वीकार है, वहीं सच्चा जीवन है।

जहाँ ऐसे आत्मा का स्वीकार नहीं है, वहाँ सच्चा जीवन भी नहीं है।

❀ जहाँ कारणस्वभाव का स्वीकार है, वहाँ सम्यक्त्वादि कार्य भी विद्यमान है ही।

❀ जहाँ कारणस्वभाव का स्वीकार नहीं है, वहाँ कार्य भी नहीं है।

❀ कोई कहे कि—हममें कारण है परंतु सम्यक्त्वादि कार्य अभी नहीं हुआ,—तो उसने कारण का भी सच्चा स्वीकार नहीं किया।

❀ जिसे पर्याय में सम्यक्त्वादि हुए हैं, उसे कारण भी सदा निकट ही वर्तता है, उसे कारण किंचित् दूर नहीं है, कारण का कभी विरह नहीं है।

ज्ञानमात्र आत्मभाव में कारण और कार्य, शक्ति और व्यक्ति, अस्ति और नास्ति आदि अनंत धर्मों का एकसाथ समावेश है।

## परमात्मा के घर पुत्र उत्पन्न होने से समस्त गुण-परिवार को आनंद!

ज्ञानलक्षण द्वारा आत्मा को भिन्न करके, ज्ञानभाव के अनुभवरूप परिणमन हुआ, तब उस ज्ञानचेतना में व्याप्त होनेवाली आत्मा की अनंत शक्तियों में से प्रत्येक शक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में शुद्धरूप से व्याप्त होनेवाली है।

राग कहीं द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त नहीं हो सकता, ज्ञानादि स्वभावगुणों में ही द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में तन्मय होकर रहने की शक्ति है, और ऐसी शक्ति का परिणमन होने पर रागादिभाव उसमें से बाहर रह जाते हैं; ज्ञानपरिणमन में राग प्रवेश नहीं कर सकता परंतु अनंत गुणों का निर्मल स्वाद उसमें समा जाता है। उस ज्ञानक्रिया में उसके कर्ता-करण आदि छह कारक भी समा जाते हैं, वे छहों कारक ज्ञानमय हैं; कोई कारक ज्ञान से भिन्न या रागमय नहीं है। अहा, चैतन्यपरिणाम, वह तो परमात्मा का पुत्र है; परमात्मा के घर शुद्धपर्यायरूपी पुत्र

उत्पन्न होने से उसका समस्त गुण-परिवार आनंदित होता है; समस्त गुणसमाजरूप कुटुम्ब-परिवार में आनंद व्याप्त हो जाता है। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों असंख्यप्रदेश से समान हैं, उन असंख्यप्रदेशों में सर्वत्र आनंद व्यापता है, सर्वत्र ज्ञान व्यापता है—इसप्रकार अनंत शक्तियाँ निर्मलरूप से असंख्यप्रदेशी द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्यापती हैं। ऐसा पूर्ण आत्मा धर्मी के अनुभव में, श्रद्धा में और ज्ञान में आया है। और जब ऐसा आत्मा ज्ञान में आया, तभी महावीर भगवान को पहिचानकर उन्हें सच्चा नमस्कार हुआ। इसके अतिरिक्त जिन्हें आत्मा के स्वरूप की प्रतीति नहीं है, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव, हे महावीर प्रभो! आपको नमस्कार नहीं कर सकते, वे आपको नहीं जान सकते।

## अहो, चैतन्य की अद्‌भुत सुंदरता!

अहा, चैतन्य की अद्‌भुत सुंदरता! उसकी क्या बात! परमेश्वर की जितनी सुंदरता है, वह सब सुंदरता इस चैतन्य में भी भरी है। एकबार उसे अनुभव में लिया, वहाँ सारे जगत में उससे सुंदर अन्य कुछ भासित नहीं होता। ऐसे सुंदर चैतन्यनिधान जिसने अपने में देखे, उसे जड़ निधान का स्वामित्व रहता ही नहीं; इसलिये उसकी ममता घट ही जाती है। चैतन्य के निकट जहाँ राग का भी स्वामित्व नहीं रहता, वहाँ जड़ शरीर, पैसे आदि की तो बात ही क्या?

## धर्मी की ज्ञानचेतना अनंतगुण के वैभव सहित प्रगटी है

ज्ञानशक्तिरूप गुण आत्मा में सदा है, परंतु ज्ञानचेतना सदा नहीं होती, वह तो नई प्रगट होती है। जब ज्ञानादि अनंतशक्तिसंपन्न अपना अनुभव करके ज्ञान परिणमित हुआ, तब जीव को ज्ञानचेतना प्रगट हुई। वह ज्ञानचेतना अनंत गुणों का वेदन साथ लेकर प्रगट हुई है।

— उससे पूर्व क्या ज्ञान की पर्याय नहीं थी?

— थी तो अवश्य, परंतु वह पर्याय मिथ्यात्व सहित अज्ञानरूप थी, राग से भिन्न चैतन्यस्वाद का वेदन उसमें नहीं था; इसलिये उसे ज्ञानचेतना नहीं कहते। मात्र परोन्मुखी इंद्रियज्ञान में आत्मा की प्रसिद्धि नहीं है, इसलिये उस इंद्रियज्ञान को आत्मा का लक्षण भी वास्तव में नहीं कहते; इंद्रियज्ञान द्वारा आत्मा का ग्रहण नहीं होता। अतीन्द्रिय होकर आत्मा को पकड़नेवाला ज्ञान, आत्मा के अनंतधर्मों सहित परिणमित हो रहा है।—इसप्रकार आत्मा का ज्ञान अनेकांतस्वरूप से विलसित हो रहा है।

आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं, वे एक-एक अलग नहीं वर्ततीं, परंतु प्रत्येक शक्ति दूसरी अनंत शक्तियों सहित वर्तती है; क्षणिकपना और नित्यपना दोनों उसमें एकसाथ वर्तते हैं; छहों कारक एकसाथ वर्त रहे हैं।

## आचार्यदेव ने चखाया है—चैतन्यसुख का अपूर्व स्वाद

ज्ञानस्वभाव से परिणमित आत्मा स्वयं सुखरूप ही है; सुख ज्ञान से पृथक् नहीं रहता। सुख सर्वगुणों में व्यापक है। धर्मी को आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में सुख की व्याप्ति है। आत्मा के अनंत गुणों का आनंद सुखशक्ति में भरा है। जब ज्ञानउपयोग उसमें एकाकार हो, तब जिसका वर्णन वचन से नहीं हो सकता, ऐसा अतीन्द्रिय निर्विकल्प आनंद होता है। ऐसे आनंदसहित जीवन ही आत्मा का सच्चा जीवन है; उस सुख जीवन में किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है।

सुख का पर्वत आत्मा, उसमें से आनंद का मधुर झरना झरता है। ज्ञानपरिणमन के साथ सुख है, ज्ञान के साथ दु:ख तन्मयरूप नहीं है। सुख और दु:ख दोनों का वेदन एक ही पर्याय में होने पर भी उसमें सुख का वेदन तो ज्ञानधारा के साथ तन्मय है और दु:ख का वेदन ज्ञानधारा से अतन्मय है।—ऐसा सूक्ष्म भावों का भेदज्ञान, वह जैनमार्ग की अलौकिक वस्तु है। एक समय में सुख और दु:ख दोनों के छह-छह कारक अपने-अपने में भिन्न-भिन्न वर्तते हैं। दु:ख के कारक सुख में नहीं हैं, सुख के कारक दु:ख में नहीं हैं। ज्ञान के कारक राग में नहीं है, राग के कारक ज्ञान में नहीं हैं।—ऐसा सूक्ष्म भेदज्ञान अनेकांतमार्ग के सिवा अन्यत्र कहीं नहीं है। ऐसा अनेकांत मार्ग, वह भगवान महावीर का मार्ग है।

ज्ञानस्वरूप आत्मा का वेदन करने पर आत्मा के सुख का जो वेदन हुआ, उस सुख के एक अंश के निकट समस्त जगत की बाह्य विभूति की कोई गिनती नहीं है। अहा, यह तो सर्वज्ञ का मार्ग है! इसमें कहा हुआ आत्मा का स्वरूप जिसने श्रद्धा-ज्ञान में उतार लिया, वह जीव कृतकृत्य हो गया, उसके जन्म-मरण का अंत आ गया, और मोक्षसुख की वानगी उसने चख ली।

ज्ञान-सुख-प्रभुता आदि अनंत भावों से भरपूर निजस्वरूप की रचना करे, ऐसा सामर्थ्यवान आत्मवीर्य है। जब आत्मा ज्ञानस्वरूप से परिणमित हुआ, तब उसमें अनंत गुणों के

शुद्ध कार्य की रचना करनेरूप वीर्यशक्ति भी साथ ही है। सम्यक्त्वादि निजगुणों की रचना अपनी वीर्यशक्ति से आत्मा स्वयं करता है; उसमें बीच में राग की या अन्य किसी निमित्त की आवश्यकता नहीं है। ऐसे आत्मा की प्रतीति द्वारा पंचपरमेष्ठी जैसा सुख धर्मी अपने में अनुभवता है। अरे, ऐसे चैतन्यतत्त्व के मंथन में शांति की अनुपम तरंगें उठती हैं.... उसके अनुभव के आनंद की तो बात ही क्या!

## अनंत चैतन्यशक्तियाँ उत्कीर्ण हो गई हैं।—कहाँ?

आत्मा की यह सर्व शक्तियाँ सोनगढ़ के परमागममंदिर में संगमरमर में उत्कीर्ण हो गई हैं और धर्मी क अंतर में वे भावश्रुतज्ञान के पटल पर अंकित हो गई हैं। हे जीव! तू भी उन्हें अपने अंतर में भावश्रुत में उत्कीर्ण कर ले! तो तुझे उनकी अगाध महिमा समझ में आयेगी। अनंतशक्ति का मंदिर यह आत्मा स्वयं है। उसका जिसने अनुभव किया, उसने समस्त श्रुतज्ञान परमागम का सार आत्मा में टंकोत्कीर्ण कर लिया, अनंत शक्तियाँ उसके आत्मा में उत्कीर्ण हो गई। अनंत शक्ति द्वारा उसने अपने आत्मा का शृंगार किया... शोभायमान बनाया... चैतन्य की परम वीरता और प्रभुता उसने प्रगट की।

असंख्यप्रदेशी आत्मभूमि में महान आनंद उत्पन्न होता है। उस आनंद की रचना राग द्वारा नहीं होती, परंतु स्वरूप को रचनेवाली आत्मा की वीर्यशक्ति द्वारा ही उसकी रचना होती है। ज्ञान-सुख-वीर्य आदि समस्त आत्मशक्तियाँ एक साथ निर्मलभावरूप से उल्लसित होती हैं। ऐसा स्वभाव प्रतीति में आते ही अनंत गुणों में निर्मल परिणमन प्रारंभ हो जाता है। उस परिणमन में राग का समावेश नहीं होता। ऐसे शुद्ध गुण और पर्यायें, उन दोनों में ज्ञानस्वरूप आत्मा विद्यमान है। धर्मी की पर्याय में चैतन्य के अनंत भंडार खुल गये हैं; अनंत शक्तियाँ उसकी पर्याय में उत्कीर्ण हो गई हैं। शब्दों से लिखने में अनंत शक्तियाँ नहीं आ सकतीं, अंतर के वेदन में अनंत शक्तियों का स्वाद आ जाता है।

## प्रभु की बतलायी हुई चैतन्यप्रभुता का क्या कहना!

आत्मा में स्वाधीन प्रभुता विद्यमान है; महावीर की वाणी ने उस प्रभुता का प्रकाशन किया है और धर्मी ने अपनी प्रभुता को विश्वास में लिया है, पर्याय में भी उसे प्रभुत्व भासित हुआ है... स्वसंवेदन में आया है।

प्रवचनसार के परिशिष्ट में 47 नयों से आत्मा के शुद्ध-अशुद्ध सर्व धर्म बतलाये हैं। यहाँ समयसार के परिशिष्ट में ज्ञान के साथ की 47 शक्तियों के परिणमन का वर्णन है... उसमें अशुद्धता का समावेश नहीं होता, उसमें तो ज्ञान के साथ वर्तती हुई शुद्धता ही आती है। चेतनत्व जागृत हुआ और अपने स्वभावरूप परिणमित हुआ, उसमें अपार प्रभुता विकसित हुई है। द्रव्यस्वभाव में प्रभुता तो सर्व जीवों में है, यहाँ तो वह प्रभुता पर्यायरूप परिणमित हुई, उसकी बात है। धर्मी की पर्याय में कर्म की प्रभुता नहीं चलती, धर्मी का आत्मा स्वयं प्रतापवंत स्वतंत्रतारूपी प्रभुता के द्वारा सुशोभित हो रहा है, उसके प्रताप या उसकी शोभा का किसी के द्वारा घात नहीं हो सकता। अहा, चैतन्यप्रभु की शक्ति की क्या बात है! उसके प्रताप की, उसकी शोभा की क्या बात! चैतन्य की प्रभुता में राग-विकल्प कैसे? चैतन्य की अखंड शोभा में राग का कलंक कैसा? चैतन्यप्रभु स्वपर्याय में स्वाधीनरूप से सुशोभित है, उसकी शोभा के लिये किसी की पराधीनता नहीं है, वह तो स्वाधीनरूप से-शुद्धतारूप से स्वयं प्रभु होकर परिणमित होता है। उस परिणमन में कर्म के साथ संबंध का अभाव है। अहो, ऐसी प्रभुता के संस्कार आत्मा में डालने से एकबार तेरी प्रभुता खिल उठेगी। प्रभुत्वशक्ति जीव में परिणामिकभाव से त्रिकाल है—सहज स्वभावरूप है; उसका स्वीकार करनेवाले को पर्याय में उसका व्यक्त परिणमन होने लगता है; इसलिये क्षायिकादि भावरूप प्रभुता प्रगट होती है। ऐसी गुण-पर्याय की अलौकिक संधि है। गुण का स्वीकार करके परिणमित हो और गुण जैसी शुद्धपर्याय न हो—ऐसा नहीं हो सकता। स्वभाव के विश्वास से उसकी पर्याय की नौका तरने लगी... उसका चैतन्यतेज फैलने लगा... उसके चैतन्य तेज के समक्ष कोई देख नहीं सकता, उसके प्रताप को कोई नष्ट नहीं कर सकता।

भाई! अपने चैतन्य-महल में प्रवेश करते ही तुझे अपनी प्रभुता का अलौकिक भंडार दिखायी देगा... तेरा चैतन्यदेव तुझे केवलज्ञानादि अनंत गुणों की अपार लक्ष्मी देगा। ऐसी प्रभुता के संस्कार पर्याय में डाल तो अनादिकालीन कषाय के संस्कार तेरी पर्याय में से छूट जायेंगे। तेरी पर्याय में प्रभुता का विशाल समुद्र अनंतगुणों से भरा है, वह स्वाधीनरूप से शोभायमान है।

## आत्मशक्ति की गंभीरता.... वह तो स्वसंवेदनगोचर है

अहो, गंभीर आत्मशक्तियाँ, उनकी गहराई का पार विकल्प द्वारा नहीं पाया जा सकता, परंतु ज्ञान के अंतर्मुख स्वसंवेदन में सर्व शक्तियों का स्वाद आ जाता है।

अहा, ज्ञानपर्याय विश्व का स्पर्श नहीं करती, तथापि विश्व उसमें ज्ञात हो जाता है—ऐसी सर्वज्ञ परिणतिरूप से परिणमित होने के स्वभाववाला आत्मा है। ऐसे आत्मा को धर्मी जीव ने श्रद्धा-ज्ञान में लिया है; परमात्मा के घर में वह प्रविष्ट हो चुका है। उसके परमात्मस्वभाव के निकट राग का क्या मूल्य है? 'सर्वज्ञस्वभाव' में राग की सर्वथा नास्ति है। इसलिये ऐसा सर्वज्ञस्वभाव जिसके अपने अंतर में बैठा, वह जीव राग से छूट गया, भव से छूट गया और मोक्ष की ओर चलने लगा... उसकी परिणति का प्रवाह सर्वज्ञता की ओर बहने लगा।

अहा, अगाध चैतन्यशक्ति की क्या बात है!

एक जीव सात हाथ का हो और केवलज्ञान प्राप्त करता है;

एक जीव सवा पाँच सौ धनुष का हो और केवलज्ञान प्राप्त करता है;

दोनों जीवों का केवलज्ञान-सामर्थ्य एक-सा है। ऐसा केवलज्ञान स्वभाव, वह विकल्प का विषय नहीं है; वह तो स्वसंवेदन ज्ञान का विषय है।

## सुनहरी शक्तियाँ * ज्ञानशक्ति में केवलज्ञान का उत्कीर्णन

अहा, ज्ञान की गहराई का कोई पार नहीं है। उस ज्ञानशक्ति में यह केवलज्ञान का उत्कीर्णन चल रहा है। बाह्य में परमागम मंदिर के संगमरमर में यह आत्मशक्तियाँ उत्कीर्ण हो गई हैं और भीतर ज्ञानी के ज्ञान में अनंत आत्मशक्तियाँ उत्कीर्ण हो गई हैं। शब्दों के उत्कीर्णन में अनंत शक्तियाँ नहीं समाती परंतु स्वसंवेदन ज्ञान के अनुभव में अनंत शक्तियों का स्वाद एक साथ समा जाता है।

ज्ञानलक्षण से जहाँ अनंत धर्मस्वरूप आत्मा को अनुभव में लिया, वहाँ धर्मी को निजानंद का विकास होने लगा। चैतन्य तत्त्व अपने अनंत गुण की निर्मल पर्याय में विकसित होने लगा, उसमें अब संकोच नहीं होगा। संकोच रहित विकास हो, ऐसा आत्मा का स्वभाव होने से, आत्मा के सर्व गुणों में संकोचरहित परिणमन होता है।—ऐसा परिणमन कब होता है?—कि जब से चैतन्यतत्त्व प्रतीति में लिया, तभी से ऐसा परिणमन प्रारंभ होता है।

## केवलज्ञान कभी मुरझाता नहीं है

चैतन्यलक्ष्मी का विकास प्रगट हुआ, वह पुनः कभी संकुचित नहीं होता, क्योंकि वह स्वाभाविक विकास है; बाह्य में लक्ष्मी आदि का विकास हो और पश्चात् हानि भी हो जाती है; पुण्यभाव भी संकोच-विकास स्वभाववान है; उसका विकास दिखायी दे, वह कहीं सदा विकासरूप नहीं रहता, अल्पकाल में पुनः बदल जाता है। परंतु आत्मा का जो विकास अंतरशक्ति में से प्रगट हुआ, वह कभी हानि या संकोच को प्राप्त नहीं होता। केवलज्ञानादि लक्ष्मी प्रगट हुई, उसका विकास अनंत-अनंत काल तक ज्यों का त्यों बना रहता है, वह केवलज्ञान कभी मुरझाता नहीं है।

ऐसे आत्मा को जानकर जो उसका सेवन करता है, उसके तो निजशक्ति का विकास ही होता है। जो आत्मा को जानता नहीं है, उसका सेवन नहीं करता, उसे उसका विकास कहाँ से होगा? जो शुद्धआत्मा को जानता है, वह उसका सेवन करता ही है और राग का सेवन छोड़ता ही है, इसलिये उसे शुद्धपर्यायरूप परिणमन होता ही है।—ऐसे जीव की चैतन्यपरिणति में जो शक्तियाँ उल्लसित होती हैं, उनका यह वर्णन है। सत् 'है' उसका यह वर्णन है।

## आत्मा को प्रत्यक्ष करने की मति-श्रुतज्ञान की अचिंत्य शक्ति

'आत्मा प्रत्यक्ष होता ही नहीं, क्योंकि अतीन्द्रिय है—ऐसा जो मानता है, उसने आत्मा की स्वसंवेद प्रत्यक्षतारूप प्रकाशशक्ति को नहीं जाना है; वह तो इंद्रियों को ही आत्मा जानता है, इसलिये इंद्रियातीत ज्ञान का कार्य उसे विश्वास में नहीं आता। इंद्रियज्ञान को ही आत्मा मानकर वह अतीन्द्रिय आत्मा का अनादर करता है।

आत्मा अतीन्द्रिय होने पर भी उस अतीन्द्रिय को भी स्वसंवेदन द्वारा प्रत्यक्ष करने की मति-श्रुतज्ञान में शक्ति है; उस ज्ञान में इंद्रियों का अवलंबन स्वसंवेदन के समय नहीं रहता। अरे जीव! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा तुझे यह तेरी मोक्ष की विभूति बतलाते हैं। इंद्रियज्ञान से ही कार्य करनेवाला तू नहीं है, तुझमें तो स्वयं अपने को स्वसंवेदन द्वारा प्रत्यक्ष करने की शक्ति है। आत्मा को स्वसंवेदन द्वारा प्रत्यक्ष करने में अन्य किसी का अवलंबन नहीं रहता, प्रकाशशक्ति के बल से आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष करने का कार्य करता है। शक्ति के स्वसंवेदन द्वारा आत्मप्रभु आनंद के झूले में झूलता है।

इंद्रियों से, निमित्तों से, राग से, इन्द्रियज्ञान से भगवान आत्मा स्वसंवेदन में आये, ऐसा नहीं है। ज्ञानप्रकाश से जहाँ स्वसंवेदन करके आत्मा को प्रत्यक्ष किया, वहाँ इंद्रियों का, निमित्तों का, राग का या इंद्रियज्ञान का आलंबन नहीं रहता। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में प्रकाशशक्ति होने से वह प्रत्यक्ष होती है, ऐसा दृष्टिवान भगवान आत्मा है। आत्मा अंध नहीं है कि स्वयं अपने को न देखे। स्वयं अपने को (किसी अन्य की सहायता के बिना) देखे—साक्षात् देखे—अनुभव में ले, ऐसी प्रकाशशक्तिवान आत्मा है। आत्मा में ऐसा प्रकाशस्वभाव होने से उसके सर्व गुणों में भी प्रकाशस्वभावपना है, इसलिये आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय सब स्वरूप स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हों, ऐसा प्रकाशस्वभावी आत्मा है।

अहो, वीतरागी संतों की वाणी!—जिसने जानी, वह निहाल हो जाता है; गुरुदेव कहते हैं कि—अहो! समयसार तो आत्मा को देखने का अद्वितीय नेत्र है, वह आत्मा का साक्षात्कार कराता है। अहा, इस पंचम काल में भी आत्मसाधना करके एकावतारी हुआ जा सके, ऐसी सामग्री इस समयसार में रह गई है। यह तो जो अनुभव करे, उसे उसकी गंभीरता की खबर पड़ती है। इसलिये आचार्यदेव ने कहा है कि इस समयसार में निजवैभव से हम जो आत्मस्वभाव बतलाते हैं, उसे तुम स्वानुभवप्रत्यक्ष द्वारा प्रमाण करना।

भाई, यह तेरे आत्मा की प्राप्ति का अलौकिक मार्ग कहा जाता है!

भगवान आत्मा स्वयंप्रकाशमान ऐसे स्पष्ट स्वसंवेदन की शक्तिवाला है। मति-श्रुतज्ञान को सामान्यरूप से परोक्ष कहा है, तथापि स्वसंवेदन के बल से मिथ्यात्व का नाश करने पर उनमें कोई ऐसी अचिंत्य सातिशय अद्भुत शक्ति प्रगट हाती है कि वह आत्मा को प्रत्यक्ष करती है।

क्या मति-श्रुतज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष होता है?

हाँ, स्वसंवेदन के समय उस ज्ञान में भी ऐसी अद्भुत शक्ति का विकास होता है। पंचाध्यायी (गाथा 706 से 710) में कहते हैं कि—मति-श्रुतज्ञान सामान्यरूप से परोक्ष होने पर भी उनमें इतनी विशेषता है कि स्वानुभव के काल में वे भी प्रत्यक्ष हो जाते हैं। मिथ्यात्व के नाश से सम्यग्दृष्टि जीव को वास्तव में कोई ऐसी अनिर्वचनीय शक्ति होती है कि जिस शक्ति द्वारा आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष होता है। यहाँ आचार्यदेव ने प्रकाशशक्ति में यह बात स्पष्ट की है।

अहो, ज्ञानशक्ति द्वारा स्वयं अपने आत्मा का ऐसा स्पष्ट-प्रत्यक्ष स्वसंवेदन करना ही वीरप्रभु का परम प्रसाद है; और वही वीरप्रभु के मोक्ष का सच्चा महोत्सव है। ●●

# —: नये प्रकाशन :—

— **प्रवचनसार परमागम**—(कविवर वृन्दावनजी कृत)

— **आत्मावलोकन**—(श्री दीपचंदजी साधर्मी कृत) तथा श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा ब्रह्मचारी दुलीचंदजी ग्रंथमाला की ओर से छप रहे हैं।

— **भगवती आराधना**—(पंडित सदासुखदासजी कृत भाषा-टीका मूलकर्ता श्री शिवकोटी आचार्य) पृष्ठ संख्या 800, लागत 15 होने पर सस्ते मूल्य में देना है; तो सहायता और सूचना निम्न पते पर भेजें:—

ब्रह्मचारी दुलीचंद जैन ग्रंथमाला, द्वारा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
पो. सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

## आचार्यदेव का महान उपकार

पौष कृष्णा अष्टमी के प्रवचन में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के प्रति भक्तिपूर्ण अंजलि समर्पित करते हुए पूज्य स्वामीजी ने अत्यंत प्रमोदपूर्वक कहा कि—

आज कुन्दकुन्दस्वामी की आचार्य पदवी का मंगल-दिवस है। कुन्दकुन्द भगवान ने इस भरतक्षेत्र पर महान उपकार किया है। उन्होंने भगवान सीमंधर परमात्मा के साक्षात् दर्शन किये और अनुभव के निजवैभव पूर्वक समयसारादि परमागमों की रचना करके जो अचिंत्य उपकार किया, उसकी बलिहारी है! उसप्रकार का अनुभव हो, उसे ज्ञात होता है कि आचार्यदेव ने कैसा अलौकिक कार्य किया है! ....परंतु ऊपरी दृष्टि से देखने पर उसका माप नहीं निकल सकता। वे चार संघ के नायक थे; उन्होंने महावीर भगवान के शासन को इस पंचम काल में बनाए रखा है। अहो, उनको यह वाणी कानों में पड़ना, वह भी कोई महान भाग्य है... और जो उसे समझकर अंतरअनुभव करे, उसकी तो बात ही क्या!

# विविध समाचार

**सोनगढ़ ( सौराष्ट्र )**—परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। सवेरे श्री अष्टपाहुड में से भावप्राभृत पर तथा दोपहर को श्री समयसारजी में 47 शक्तियों पर गुरुदेव के भावपूर्ण आध्यात्मिक-प्रवचन हो रहे हैं। श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागम मंदिर के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की तथा परमागम मंदिर के उद्घाटन की तैयारियाँ जोरशोर से चल रही हैं। आपको विदित ही है कि फाल्गुन शुक्ला 5, बुधवार तारीख 29-2-74 से फाल्गुन शुक्ला 13, बुधवार तारीख 6-3-74 तक यह महोत्सव विशाल आयोजन सहित मनाने का निर्णय हो चुका है। महोत्सव की आमंत्रण-पत्रिका आपको निजी तौर पर अथवा आपके मुमुक्षु मंडल या श्री दिगम्बर जिनमंदिर द्वारा भिजवा रहे हैं। यदि न मिले तो हमें अवश्य सूचित करके आभारी बनायें।

**( श्री दिगम्बर भगवान महावीर 2500 वें निर्वाण-महोत्सव अंतर्गत )**

**श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागममंदिर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति**

## नवनिर्मित भव्य परमागममंदिर का उद्घाटन

सोनगढ़ सौराष्ट्र में नवनिर्मित भव्य परमागममंदिर का उद्घाटन भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज के नेता एवं प्रसिद्ध उद्योगपति श्री साहू शांतिप्रसादजी के शुभहस्त से दिनांक 6-3-74 को होगा! पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव दिनांक 27-2-74 से दिनांक 6-3-74 तक विशाल रूप में होने जा रहा है। जिसमें भाग लेने के लिये समाज के अनेक विद्वान एवं गण्यमान व्यक्तियों के आने की स्वीकृतियाँ प्राप्त हो रही हैं। यह परमागम मंदिर भारत में अद्वितीय है। इसमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा प्रणीत पाँच परमागम श्री समयसार, श्री प्रवचनसार, श्री पंचास्तिकाय, श्री नियमसार तथा श्री अष्टपाहुड़ को संगमरमर के 450 श्वेत पाषाणों पर भारत में सर्वप्रथम इटली (यूरोप) से आयी हुई मशीन द्वारा उत्कीर्ण किया गया है। मंदिर के भीतर बाहर सर्वत्र कलात्मक ढंग से संगमरमर लगाया गया है। करीब 52 विविधरंगी

पौराणिक चित्र भी परमागम की दीवारों पर सुंदर ढंग से संगमरमर में उत्कीर्ण करवाये जा रहे हैं। प्रतिष्ठा-महोत्सव के दिनों में पूज्य श्री कानजीस्वामी का प्रवचन हिन्दी में होगा।

आल इंडिया दिगम्बर भगवान महावीर 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव सोसायटी की केन्द्रीय समिति की प्रबंध-समिति की भी बैठक श्री साहू शांतिप्रसादजी की अध्यक्षता में मंगलवार, 5 मार्च 1974 को दिन में 1.00 बजे होनी तय पायी है। सौराष्ट्र-गुजरात प्रदेश क्षेत्रीय समिति का भी अधिवेशन 5-3-74 बुलाया गया है। जिसमें भारत के प्रत्येक कोने-कोने से प्रतिनिधि भाग लेंगे। सबके ठहरने आदि की समुचित व्यवस्था की गयी है। अवश्य पधारकर लाभ लेवें और सूचित करें।

नोटे:—सोनगढ़ वेस्टर्न रेलवे का स्टेशन है। अहमदाबाद, महेसाना जंक्शनों से ट्रेन बदलनी होगी। राजकीय बसें अहमदाबाद आदि स्थानों से उपलब्ध हैं।

मंत्री—

श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममंदिर

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति

# आवश्यक सूचना

**1. तत्त्वज्ञान पाठमाला, भाग-2** [डेमी, आठ पेजी साइज] अनुमानित मूल्य : 1 रुपये; पृष्ठ संख्या 70 हमारे द्वारा अब तक सात पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उस शृंखला में यह आठवाँ नया प्रकाशन है।

हमारे यहाँ से निम्नलिखित नवीन प्रकाशन इसी माह में प्रकाशित होने जा रहे हैं। कागज की स्थिति ठीक न होने से सभी प्रकाशन सीमित ही छपेंगे, अत: आवश्यकतानुसार प्रतियों का आर्डर कृपया शीघ्र ही भेजें।

**2. अपने को पहिचानिए** [डेमी, आठ पेजी साइज] अनुमानित मूल्य 60 पैसे; पृष्ठ संख्या 32। इसमें डॉ. हुकमचंद भारिल्ल द्वारा लिखित महत्पूर्ण आध्यात्मिक निबंधों का संग्रह है।

**3. पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य** [क्राउन, आठ पेजी साइज] अनुमानित मूल्य 60 पैसे; पृष्ठ संख्या 32। डॉ. हुकमचंद भारिल्ल द्वारा लिखित शोधप्रबंध 'पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व' का यह एक तरह से संक्षिप्त रूपांतर है, जो मोक्षमार्गप्रकाशक के नये संस्करण (प्रेस में) की प्रस्तावना के लिए तैयार किया गया है। जिनके पास मोक्षमार्गप्रकाशक की पुरानी प्रति है, और जिन्हें नई प्रति नहीं खरीदनी है; उन्हें यह अवश्य खरीदना चाहिए।

**4. तीर्थंकर भगवान महावीर** [डेमी, आठव पेजी साइज] अनुमानित मूल्य 35 पैसे; डॉ. हुकमचंद भारिल्ल द्वारा गत वर्ष लिखित पुस्तिका है, जो कि संशोधित और संवर्धित होकर 12 से 16 पृष्ठों की हो गई है।

मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रष्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर-302004

स्व० कविवर दीपचंदजी कृत

# ज्ञान-दर्पण

[ गताँक से आगे ]

भेदज्ञान धारा करि जीव पुद्गल दोउ, न्यारा न्यारा लखिकरि करम विहंडनी।
चिदानंद भावकौ लखाव दरसाव कियो, जामैं प्रतिभासै स्थिति सारी ब्रहमंडनी॥
करम कलंक पंक परिहरी पाई महा, सुद्धज्ञानभूमि सदाकाल है अखंडनी।
तेई समकिती हैं सरूप के गवेषी जीव, सिवपदरूपी कीनी दशा सुखपिंडनी॥107॥

आप अवलोकनि मैं आगम अपार महा, चिदानंद सुख-सुधाधार की वरसनी।
अचल अखंड निज आनंद अबाधित है, जाकी ज्ञानदशा शिवपद की परसनी॥
सकत अनंत कौ स्वभाव दरसावै जहाँ, अनुभौ की रीति एक सहज सुरसनी।
धनि ज्ञानवान तेई परमसकति ऐसी, देखी है अनंत लोकालोक की दरसनी॥108॥

तत्त्वसरधानकरि भेदज्ञान भासतु है, जातै परंपरा मोक्ष महा पाइयतु है।
तत्त्व की तरंग अभिराम आठों जाम उठै, उपादेयमाहिं मन सदा लाइयतु है॥
चिंतन स्वरूप को अनूप करै रुचि सेती, ग्रंथन मैं परतीति जाकी गाइयतु है।
परमारथ पंथ या सम्यक् व्यौहार नाम, जाकौं उर जानि जानि जानि भाइयतु है॥109॥

आगम अनेक भेद अवगाहै रुचिसेती, लखिकैं रहसी जामैं महा मन दीजिये।
अरथ विचारि एक उपादेय आप जानै, पर भिन्न मानि मानि मानिकैं तजीजिए॥
जामैं जैसौ तत्त्व होय जथावत जानै जाहि, लखि परमारथ कौं ज्ञान रस पीजिए।
मुनि परमारथ यों भेदभाव भाइयतु, चिदानंद देव कौ स्वरूप लखि लीजिए॥110॥

सोनगढ़ ( सौराष्ट्र ) में

# अभूतपूर्व विद्वत्-सम्मेलन

सूचित करते हुए हर्ष होता है कि—भगवान महावीर 2500 वाँ निर्वाण-महोत्सव अंतर्गत श्री दिगम्बर जिनबिंब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव तथा श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागममंदिर के उद्घाटन के मंगल अवसर पर सोनगढ़ (सौराष्ट्र) में सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में फाल्गुन शुक्ला 8, शनिवार, तद्नुसार दिनांक 2-3-74 को एक अभूतपूर्व विद्वत्-सम्मेलन का आयोजन किया गया है, जिसकी अध्यक्षता श्रीमान् सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंदजी वाराणसी एवं उद्घाटन श्रीमान जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी करेंगे। श्रीमान् सिद्धांताचार्य पंडित कैलाशचंदजी वाराणसी विशेष अतिथि होंगे।

बीस हजार जनता की उपस्थिति में होनेवाले इस शताधिक विद्वानों के सम्मेलन में सम्मिलित होकर अवश्य ही धर्मलाभ लें।

निवेदक—

**श्री परमागममंदिर प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति, सोनगढ़ ( सौराष्ट्र )**

| नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी | नेमीचंद पाटनी | डॉ. हुकमचंद भारिल्ल |
|---|---|---|
| अध्यक्ष | मंत्री | संयोजक विद्वत्-सम्मेलन |

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)